गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

विषय संख्या

पुस्तक संख्या

आगत पंजिका संख्या

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

ओ३म्

राज-हंस

सत्यम् शिवम् सुन्दरम्!

गुरुकुलीय महाविद्यालयस्थ ब्रह्मचारियों की मुख्य सचित्र पत्रिका



*** जन्मोत्सवांक ***

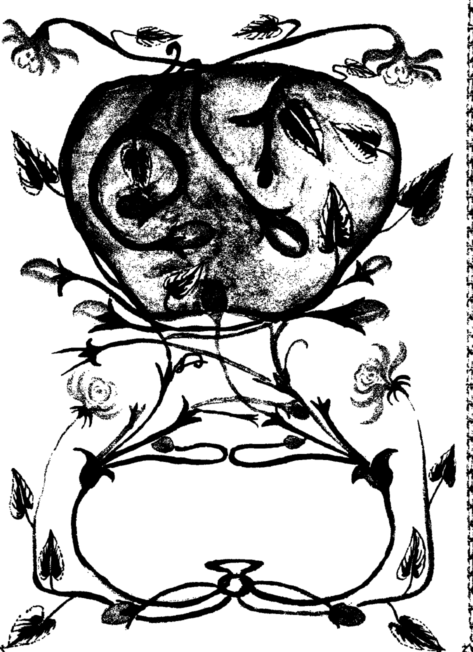
अङ्क ४

सम्पादक

नवरत्न त्रयोदश

आनन्द द्वादश

राजहंस



विषय-सूची

समर्पणम्

मानस-मुक्ता को,

जिसका

अभिलाषी है यह

'राजहंस'

005716



राजहंस

हंस, सुना, तुम चुगते मोती !

मेरे मानस में आओगे,
सचमुच मुझ को अपनाओगे?
तुम क्या जानो, तुम्हें बुलाते मुझे झिझक कितनी है होती

हंस, सुना, तुम चुगते मोती !

मेरा मानस जलता रहता;
शोले लाल उगलता रहता,
कहां रहोगे, क्या खाओगे, यही सोच चेतनता रोती!
हंस, सुना, तुम चुगते मोती!

तुम मुझ को कहते पत्थर दिल;
किन्तु, बचा भी क्या मेरा दिल?
पिघला इसे तुम्हारे हित आंखों में सतत बनाता मोती!
हंस, सुना, तुम चुगते मोती!

'प्रकाश की रेखा'[1] से

चारों ओर अँधेरा छाया !

उषा थिरकती पूर्व गगन में
है अभिराम प्रकाश भुवन में
पर न हमारी दीन कुटी ने इस प्रकाश का कण भी पाया !
चारों ओर अँधेरा छाया !
रजनी थी; थे भाग्य हमारे;
गिनते रहते अगणित तारे,
दुखियों का छोटा-सा सुख भी कब विधि की आँखों को भाया !
चारों ओर अँधेरा छाया !
सुना रहे हैं सब अपनों को
बीती रजनी के सपनों को,
जाग रात भर इन्तजार की, हमें न कोई सपना आया !
चारों ओर अँधेरा छाया !

---

1 लेखक की शीघ्र प्रकाशित होने वाली रचना

2

तुमने यदि ठुकराया होता !

तो मैं आज तुम्हारा होता
तुममें ही अपनापन खोता
यों आगे बढ़कर तुमने यदि मुझे नहीं अपनाया होता !
तुम ने यदि ठुकराया होता !

दिया मुझे तुमने सब कुछ ही
लेने को फिर बचा न कुछ भी
काश कि तुमने यह अपनापन अपने पास बचाया होता !
तुम ने यदि ठुकराया होता !

तुम मुझ को कहते हो निष्ठुर
पास न मेरे कोई उत्तर
कुछ कहता मैं यदि रहस्य यह समझ स्वयं कुछ पाया होता !
तुम ने यदि ठुकराया होता !

राजहंस



महर्षि दयानन्द

महर्षि दयानन्द निस्सन्देह इस युग के जीवन-दाता थे। भारतवर्ष में आज जो कुछ भी जागृति दिखलायी दे रही है, इस की जागृति में उन का एक बड़ा भारी हाथ है। ऋषि दयानन्द १९ वीं शताब्दी के सब से बड़े विद्वान, धर्मप्रचारक, देशोद्धारक तथा सर्वतोमुख सुधारक थे। उन्होंने जहां धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया, वहां राजनैतिक दृष्टि से भी गिरे हुए भारत को अभ्युत्थान का मार्ग बताया। [illegible] भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार और ईसाई तथा ~~ईसाई और~~ मुसलमानों द्वारा उपस्थित किये गए हिन्दू धर्म के विरुद्ध साहित्य से वैदिक-धर्म का मान घट रहा था और उस का स्थान अनेक उत्पातों की

मूल पश्चिमीय सभ्यता ले रही थी। प्राचीन संस्कृत साहित्य निकम्मा और वेद गडरियों के गीत कहे जाने लगे थे, ऐसी हालत में "वेदमनुसरत" Back to the Vedas की ध्वनि को प्रतिध्वनित कर देना स्वामी दयानन्द के विशाल व्यक्तित्व उन के अखण्ड ब्रह्मचर्य, उन के त्याग और तपस्या और उन के अपूर्व पाण्डित्य एवं निर्भीकतापूर्ण सत्य उपदेशों का ही फल था। देश के नवयुवक मातृभाषा हिन्दी को अंग्रेजी की वेदी पर बलिदान कर चुके थे। जिस समय किसी को भी हिन्दी भाषा की उत्कृष्टता तथा वैज्ञानिकता पर विश्वास नहीं होता था, ऐसी स्थिति में हिन्दी भाषा में उन के ये वाक्य कितने महत्त्व के हैं, यह आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं। महर्षि लिखते हैं कि — "जो आदमी इस देश का अन्न खाकर, जल पीकर तथा सांस लेकर इस देश की आर्यभाषा को नहीं जानता, वह देश का क्या भला कर सकता

है ! दयानन्द की आंखें तो उस दिन को देखना चाहती हैं जब कि हिमालय से कन्याकुमारी तक तथा अटक से कटक तक एक ही आर्य भाषा बोली जाती हो।" कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति इस इन वाक्यों से यह बात आसानी से समझ सकता है कि उन के हृदय में देश प्रेम की आग थी और था एक धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियों को दग्ध कर देने वाला एक प्रबल दावानल। इन्हीं स्पष्ट उक्तियों के कारण ही आज कुछ लोग उन्हें असहिष्णु कहें तो उन्हें "असहिष्णु" शब्द के लिये किसी दूसरे ही कोष का निर्माण करना पड़ेगा। विष देने वालों को भी क्षमा से जीतना महर्षि के जीवन की कई बार दोहराई गई घटना है। दयानन्द को बुराई से स्वाभाविक वैर है, बुरे से नहीं। उन्हें पतन पर अवश्य क्रोध आता है, परन्तु पतित पर दया। अनूपशहर में उन्हें एक व्यक्ति ने पान में विष रख कर दिया और अधिकारी ने यह सुनकर उसे हवालात में बन्द कर

सुनकर वह दयालु आत्मा दुखित हो उठा। उस के दिल से देश के लिये दर्दभरी आहें निकल पड़ी। उस ने करुणापूर्ण शब्दों में कहा "है कोई दुनियां में भटकों को मार्ग दिखाने वाला मेरा सहायक! ओह! चारों ओर से आवाज आती है "क्या गंगा भी कभी उल्टी बही है।" हो सकता है कि हम जैसों के लिये यह एक निराशाजनक उत्तर हो परन्तु वे तो एक महापुरुष थे। उन के जीवन में कृष्ण के प्रेम और चौर्य का बुद्ध की अहिंसा और संयम का तथा ईसा की दया और क्षमा का अद्भुत संयोग हुआ था। उन के दिल में परतन्त्रता के लिये स्थान नहीं था यही कारण है कि आज से लगभग 60 वर्ष पूर्व महर्षि बड़े जोरदार शब्दों में लिखते हैं कि "पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता माता के समान कृपा न्याय और दया के साथ भी किये गए विदेशी राज्य से स्वदेशी राज्य कई गुना अच्छा है। मैं आज महर्षि के जीवन की घटनाओं का अधिक उल्लेख नहीं करूंगा क्योंकि मैं समझता हूं कि आप शायद उन के जीवन की एक २ घटना

से परिचित होंगे। मैं तो आज आप को यह बताना चाहता हूं कि जिस समय स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म हुआ था, उस समय हिन्दू जाति अपने अतीत गौरव को भूल चुकी थी। उन्होंने अपनी दूरदर्शी सूक्ष्म ज्ञान दृष्टि से समाज के अंग प्रत्यंग की परीक्षा की और अपनी सहज निर्भिकता के साथ श्रवण-कटु सत्यों को प्रगट करना शुरू किया। लकीर की फ़कीर अंध-विश्वासी हिन्दू-जनता में खलबली सी मच गई। चारों ओर से क्या हिन्दू क्या मुसलमान, क्या पारसी और क्या जैनी सभी धर्मावलम्बियों की विरोध की आवाजे आने लगीं किन्तु सांच को आंच कहां। महर्षि ने ज़ोरदार शब्दों में कह दिया कि दयानन्द के मुंह को तोप के मुंह से बांधकर के ही क्यों न उड़ा दिया जाय, दयानन्द के जीते जी दयानन्द की अंगुलियों को दीपक की बत्ती बनाकर जला ही क्यों न दिया जाय, परन्तु दयानन्द तो जो सत्य है उसे सत्य ही कहेगा। धन्य हो महर्षि! तुम धन्य हो, तुम्हारी उक्तियाँ आज के

नवयुवकों को लज्जा देने वाली थीं। तुम्हारे सिद्धान्त और उपदेश आज भी आर्य समाज को नवजीवन देने वाले हैं। आज यद्यपि महर्षि हम लोगों के बीच में नहीं हैं, परन्तु उन्होंने २७ वर्षों तक भारत के बड़े २ नगरों में घूम २ कर सत्य वैदिक सिद्धान्तों को प्रचार कर निराश भारतीय जनता को आशान्वित किया था। उन के दिव्य-नाद से आज भी भारत का कोना २ गूंज रहा है। उन के महान् उद्देश्यों को न समझ कर मूर्ख लोगों ने उन का विरोध किया, उन्हें विष दिया, उन की हत्या के लिये षड्यन्त्र रचे, कीचड़, ईंट, पत्थर फेंक कर उन्हें अपमानित किया, परन्तु वे इन आपत्तियों से न घबराते हुए और अपने गुरु विरजानन्द जी के वचनों को पूर्ण करते हुए जगह २ सत्य वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने लगे। उन्होंने झूठे विश्वास की जगह तर्क, वैर की जगह प्रेम और नाना देवी देवताओं की पूजा के स्थान पर एक ईश्वर की पूजा की स्थापना की। आर्य समाज के दस नियमों

मे महर्षि ने अपने अपूर्व योगबल से संसार के सब धर्मों की सर्व श्रेष्ठ बातें कूट २ कर भर दी हैं।

महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन के पिछले भाग में वेद भाष्य शुरू किया। उन्होंने ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र की व्याख्या करते हुए लिखा कि—"अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।" में अग्नि का अर्थ साधारण अग्निवाचक ही नहीं अपितु परमात्मा तथा विद्वान् भी इस के अर्थ हैं। उन्होंने बताया कि मन्त्रों के आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक त्रिविध अर्थ होते हैं। और सच तो परमेश्वर का किसी भी मन्त्र में त्याग नहीं किया जा सकता। आज तक एतद्देशीय तथा अपने आप को scholar कहने वाले European लोग महर्षि की इस धारणा को Interpretation of his own Image मनमानी कल्पना कह कर मजाक ही क्यों न उड़ाया करें, परन्तु मैं तो उस भयंकर तूफान का ध्यान करते ही सहम जाता हूं जब कि दयानन्द को

सब शास्त्रकारों के नाम पर परस्पर विरोध की काली घटाओं तथा विविध वादों के भंवर में चट्टान की तरह अचल पाता हूं। नहीं नहीं! दयानन्द उस तूफान में डिगे नहीं, अपने आप को केवल सम्भाले रहे इतना ही नहीं अपितु उन्होंने एक दम इन सब परस्पर-विरुद्ध रूढ़ियों और वादों के ~~अतिरिक्त विरोध~~ विरुद्ध घोषणा कर दी कि "वेद ही परम पिता परमात्मा की वाणी है, नित्य तथा स्वतः प्रमाण है, अन्य सब शास्त्र वेदानुकूलतया ही प्रमाण हैं। वेद में किसी व्यक्ति विशेष का इतिहास नहीं है अपितु वेद का प्रत्येक शब्द यौगिक है। हो सकता है कि कुछ सदियों बाद वेद का प्रामाणिक भाष्य कुछ और ही हो, परन्तु महर्षि दयानन्द वेद भाष्य कर्त्ताओं में एक प्रकाश स्तम्भ अवश्य सिद्ध होंगे। केवल वेद भाष्य ही क्या, मैं तो जब उन के जीवन को पढ़ता हूं तो उन के जीवन की एक २ घटना मेरे लिये प्रकाश स्तम्भ का काम करती है। मैं तो उन के काशी-शास्त्रार्थ पढ़ कर उन की विद्वत्ता को देख कर मुग्ध हो जाता हूं। उन्होंने अपने जीवन में किस तरह कठोर जीवन

व्यतीत करते हुए शिक्षा पाई और किस तरह मूर्ति-पूजकों के गढ़ बनारस पर छ: बार शास्त्रार्थ में विजय पाई, यह सब आप को अच्छी तरह से मालूम है। अन्त में मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि हे ऋषिवर! आज तुम्हें भौतिक देह त्यागे लगभग ६० वर्ष व्यतीत हो गए, परन्तु आज भी आर्य समाज तुम्हारा ऋणी है और उस ऋण से उऋण होना चाहता है, इस लिये जिस परम पिता की असीम गोद में तुम परमानन्द का अनुभव कर रहे हो, उसी से प्रार्थना करता हूं कि मुझे तुम्हारा सच्चा शिष्य होने की शक्ति प्रदान करें और तुम्हारा मिशन इस दु:खी संसार की काया पलट कर संसार में सुख तथा शान्तिपूर्ण स्वराज्य की स्थापना करे और हम सब भाई उस मिशन को पूरा करने के लिये मकान में लगी एक २ ईंट की नाईं अपना भाग अदा करें।

ओ३म् शान्ति: शान्ति: शान्ति:

महात्मा मोहनदास गांधी

इस से पूर्व कि मैं आप के सामने महात्मा गान्धी जी के बारे में कुछ विचार लिखूं, महात्मा टालसटाय के मूल विचारों को मैं आप के सामने रखना चाहता हूं क्योंकि टालसटाय को ही गान्धी जी अपना गुरु मानते हैं।

टालसटाय प्रत्येक चीज के मूल कारण को खोजने की कोशिश किया करते थे। वे कहते थे कि अगर किसी ने चोरी की तो उस का कोई खास कारण रहा होगा कानून का काम अपराधी को दण्ड देना नहीं, उस का सुधार करना होना चाहिये। ऐसे व्यक्ति को जब जेल भेजा जायगा तो जब वह वापिस आयगा, तो सचमुच समाज के प्रति खतरा साबित होगा। उन की सम्मति में ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध समाज ने उन के पापाचरण की अपेक्षा

अधिक पापाचरण किया है। वह उस अपराधी की
वह उस अपराधी की अपेक्षा जज और जेलरक्षक को
अधिक अपराधी समझते थे।

उन का कहना था कि अपराधी को दण्ड देने की प्रणाली गलत है। इन जेलो से हमारा संरक्षण कहां होता है? आदमी वहां एक निश्चित अवधि तक रखे जाते हैं और फिर छोड़ दिये जाते हैं। और इन जेलो से वे इतने दुरात्मा और दूषित होकर निकलते हैं कि समाज का संरक्षण होने के स्थान पर उस की आपत्ति की आशंका पहिले से ज्यादा बढ़ जाती है।

आदमी जन्म ही से न बुरा है और न अच्छा। संस्कार और वातावरण उसे जैसा बना देते हैं वह वैसा ही बन जाता है। किसी मनुष्य के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह नितान्त बुरा है या पूरा साधु है। वह समाज मे जैसा कुछ आचरण करता है, उस का उत्तरदायी स्वयं समाज है। वेश्या अपने काम को उत्तम समझती है, हत्यारा या जासूस अपने अपने कामो को उत्तम समझते हैं तो इस का कारण यह है कि समाज ने उन्हें उस विशेष वातावरण मे रहने को विवश किया है।

आप नैपोलियन को अजेय मानते हैं। चाणक्य और चन्द्रगुप्त की भाँति पराक्रमी मानते हैं। पर आप टॉलस्टाय लिखित 'युद्ध और शान्ति' नामक पुस्तक पढ़ जाय तो पता लगेगा कि टॉलस्टाय ने इस फ्रेन्च सम्राट का ऐसा निर्मम विश्लेषण किया है कि वह बहुत ही पापी और दुर्बल मानसिक शक्ति वाला आदमी प्रतीत होता है। पुस्तक समाप्त होते न होते नैपोलियन आप के आगे मुकुटविहीन रत्नभ्रष्ट तथा रंगाभास रह जाता है।

उन का कहना था कि युद्ध बड़ा ही नृशंस व्यापार है। एक व्यक्ति दूसरे के कलेजे में चुपचाप संगीन घुसेड़ देता है और वह समझता है कि मैंने बड़ी वीरता का काम किया। जिस प्राण को वह प्रदान नहीं कर सकता उसे नष्ट करने का उसे क्या अधिकार है। चींटी भी पैर पड़ने पर काट खाती है जिस से पता लगता है कि उसे भी स्वतन्त्रता उतनी ही प्रिय है जितनी हाथी को। जो सैनिक दूसरे की स्वतन्त्रता का अपहरण करने के लिये उस के देश में घुस कर बीभत्स काण्ड करता है, वह स्वयं अपनी और अपने देशवासी

स्वतन्त्रता का अपहरण पसन्द न होगा । टालस्टाय की दृष्टि से बड़े बड़े जनरल सिंक-दरस्त कसाई थे, और दूसरे के देश पर अधिकार करने वाले चोर और डाकू थे - साधारण चोर और डाकू नहीं, हत्यारे चोर और डाकू ।

लोग कहते हैं - देश की रक्षा के लिये सेना का रखना अनिवार्य है और देश में आन्तरिक शान्ति स्थापित करने के लिये पुलिस का रखना जरूरी है। टालस्टाय की शिकायत थी कि देश की रक्षा की कोई जरूरत नहीं रहेगी, यदि सब एक दूसरे से प्रेम करने लगेंगे ।

टालस्टाय और शिक्षाप्रणाली - वे कहते हैं - आज कल स्कूलों में जो नियन्त्रण की ओर इतना ध्यान दिया जाता है वो गलती है। नियन्त्रण के नाम पर बालक को क्लास में बोलने और स्कूल के सहन में घूमने तक की स्वतन्त्रता नहीं दी जाती। जरा जरा सी बात पर उन्हें इतना कठोर दण्ड दिया जाता है कि उन में असहनशीलता की आदत पड़ जाती है।

सब लड़कों के सामने किसी विद्यार्थी को सजा देना भी भारी भूल है। इस से विद्यार्थी अपने सहपाठियों का उपहास बनता है और इस से उस के हृदय में लज्जा ग्लानि की भावना उत्पन्न होती है जो बाद को शिक्षक के प्रति घृणा के रूप में परिवर्तित हो जाती है। शिक्षक को तो विद्यार्थी के हृदय में घुसने की चेष्टा करनी चाहिये। जिन बालकों की प्रकृति दुष्ट हो उन्हें भौतिक दंड न देकर उन पर शिक्षक को विशेष प्रयत्न करना चाहिये। बालक की यह दुष्ट प्रकृति अभी बद्धमूल नहीं हुई है। यह केवल माता पिता या भाई बहिन या पास पड़ोसियों का सम्मिश्रण है जो चेष्टा करने से मिट सकता है।

एट्टयपुर का राजदरबार के बारे में मैंने इतना इसी लिये लिखा है कि जिस से आप को यह पता लग जाय कि राजदरबार का भारती जी के विचारों पर कितना प्रभाव पड़ सकता है।

यद्यपि भारती जी के बारे में बहुत

कुछ कहा जा सकता है तो यों अब मैं पाठकों
गान्धी जी के उद्योगवाद के विषय में तो कुछ मालूम

हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि
हमारी सभ्यता की परख यह नहीं है कि हमारी
कितनी आमदनी है और हम कितने आराम शौक
से रहते हैं बल्कि उस की सच्ची कसौटी तो
यही है कि हम अन्य प्राणियों की भलाई का
कितना ध्यान रखते हैं। सच्ची सभ्यता अधिकारों
से नहीं अपितु कर्तव्यों से नापी जाती है।
दूसरों की भावनाओं का ध्यान रखना और उन
के प्रति अपने कर्तव्य को महसूस करना ही
आदमी की सज्जनता की पहिचान है।

उस प्रकार इसे उद्योगवाद के बारे
में कुछ बीज का जाल खोल आता होगा कि
उन में दूसरों के प्रति कितनी सहानुभूति हो।

जब गान्धी जी गोलमेज कान्फ्रेंस
से लौटे लन्दन गये थे तो एक बार एक
आदमी ने उन से यह प्रश्न पूछा था कि आप
को उद्योगवादी बनाने वाले के सम्बन्ध में

आप का क्या मत है?

इस पर गान्धी जी ने उत्तर दिया- मुझे भय है कि उद्योगवाद मानव जाति के लिये शाप सिद्ध होगा। एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र को लूटना हमेशा जारी नहीं रह सकता। उद्योगवाद का आधार आप की लूटने की शक्ति, विदेशों के बाजार आप के लिये खुले रहने तथा प्रतियोगिता के अभाव पर निर्भर है। ये बातें दिन-प्रतिदिन इङ्गलैण्ड के लिये कम होती जा रही हैं। यही कारण है कि प्रतिदिन उन के बेकारों की संख्या में वृद्धि हो रही है। भारत का बहिष्कार आन्दोलन तो केवल एक ततैये का डंक मात्र था। और जब इङ्गलैण्ड का यह हाल है तो भारत जैसा विशाल देश उद्योगवादी बन कर लाभ उठाने की आशा नहीं कर सकता। वास्तव में यदि भारत दूसरे देशों को लूटने लगे- और यदि वह उद्योगवादी बने तो ऐसा किये बिना उस का छुटकारा नहीं तो वह दूसरे राष्ट्रों के लिये शाप-रूप और संसार के लिये खतरा बन जायगा। और दूसरे राष्ट्रों को लूटने के

लिये मैं भारत को उद्योगवादी बनाने की कोशिश
कल्पना भी करूं। अगर आप आज की
दुखद स्थिति को नहीं देखें। हम अपने ३०
करोड़ बेकारों के लिये काम तलाश कर सकते
हैं किन्तु इंग्लैण्ड अपने ३ लाख बेकारों के
लिये कोई काम तलाश नहीं कर सकता और
आज उन के सामने जो प्रश्न खड़ा हुआ है
वह उन के बुद्धिमान से बुद्धिमान लोगों को
परेशान कर रहा है। उद्योगवाद का भविष्य
अन्धकारमय है। इंग्लैण्ड को अमरीका, जापान
फ्रांस और जर्मनी सफल प्रतियोगी मिले हैं
और भारत में मुट्ठी भर मिलों की भी उनके
लिये प्रतियोगिता है। और जिस तरह भारत
में जागृति हुई है, उसी तरह दक्षिण आफ्रीका
में भी होगी। उसके पास तो प्राकृतिक साधनों
और मनुष्यों का विशाल साधन है। बलिष्ठ
अंग्रेज बलिष्ठ अफ्रीकन जाति के सामने, सहज
ही में दिखाई देते हैं। आप कहेंगे कि कुछ भी
हो वे असभ्य जंगली हैं। अवश्य वे असभ्य
हैं किन्तु जंगली नहीं और कुछ ही दिनों में

पश्चिम के राष्ट्र अपने सस्ते माल की बिक्री के लिये अफ्रीका के द्वार बन्द पायेंगे। और यदि उद्योगवाद का भविष्य पश्चिम में काला हो तो क्या वह भारत के लिये उस से भी अधिक काला सिद्ध न होगा।

कपड़े की उत्पत्ति के लिये हमारे पास चरखे के सिवाय कुछ नहीं है। अगर कोई ऐसा धंधा ढूंढ निकाला जाय तो महात्मा जी चरखे की जगह उस धन्धे को चलाने के लिये तय्यार हैं। चरखा एक ऐसा मनुष्योचित उपाय है जिस से हमारे गरीबों को वह काम मिलता है जिसे वे अपनी झोंपड़ी में भी कर सकते हैं। इस में औजार वगैरा में कोई बड़ी पूंजी नहीं लगानी पड़ती और इस की उपज आसानी से बेची जा सकती है।

अगर हम मशीनयुग की वर्तमान स्थिति को देखें तो भी हमें पता लग जायगा कि चरखा हमारे लिये कितना आवश्यक है - पूर्ण उद्योगिक अमेरिका देश में भी केवल एक ही दो पीढ़ियों में जहां की आर्थिक

उत्पादन प्रणाली के अत्यधिक धक्का देने वाले मानसिक श्रम के कारण दिमागी कमजोरी की भयंकर बीमारियों ने तहलका मचा रखा है। यह कहा जाता है कि न्यूयार्क राज्य में २२ आदमियों के पीछे १ आदमी पागलखाने में है। वहां के हस्पताल में ९१ हजार कमजोर दिमाग और ५० हजार के दिमाग मरीज हैं। करीब ५ लाख लोगों के दिमाग औसत दर्जे से बहुत नीचे हैं जो कि साधारण स्कूल के साधारण पाठ्यक्रम को चला नहीं सकते और संयुक्त राज्य में तो इन दिमागी मरीजों की संख्या वहां के कर्मचारियों की संख्या से दुगुनी अधिक है। आज वहां पर बीमारी तपेदिक और दिल की बीमारियों से कहीं अधिक ज्यादा खतरनाक बताई जाती है।

अब आप ही बताइये कि भारत में मशीनयुग लाभदायक होगा या कष्टप्रद

महात्मा जी का अहिंसाव्रत

अहिंसाव्रत की व्याख्या करने के लिये सब से पहिले हमें यह समझ लेना चाहिये कि अहिंसा, सत्य परमेश्वर में विश्वास, आत्मिक बल तथा प्रेम इत्यादि विविध शब्द एक ही तत्व की व्याख्या कर रहे हैं। इतना मान कर ही हमें आगे चलना होगा।

महात्मा जी द्वारा बनाई हुई उस प्रार्थना पर जिस को कि उन के चलाये हुवे प्रत्येक आश्रम में किया जाता है, आज हम विचार करें तो हमें उस का प्रथम जो दिखाई देता है वह यही है —

अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-असंग्रह
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन
सर्वधर्मीसमानत्व स्वदेशी स्पर्शभावना
हि एकादश सेवावी नम्रत्वे व्रतनिश्चये॥

इस के प्रत्येक में यही भाव जागृत

होता है कि न कोई छोटा है और न कोई बड़ा, सब धर्म समान ही हैं और सब धर्मों का सार यही है कि प्राणिमात्र से समान व्यवहार किया जाय।

अब मैं इस विषय पर आता हूँ कि किस प्रकार से गान्धी जी के प्रत्येक वचन तथा प्रत्येक कर्म में अहिंसा अपना घर कर चुकी थी—

आजकल हम देखते हैं कि समाजवादी जमींदारी प्रथा का जबरदस्त विरोध करते हैं वे इसे बिल्कुल नष्ट कर देना चाहते हैं। पर गान्धी जी का कहना है कि जमींदारी प्रथा को जो वर्तमान रूप दे दिया गया है उस में मौलिक सुधार हो। वह मिल मजदूरों द्वारा मिलों पर अधिकार कराना नहीं चाहते। उन्हों ने तो अनेक बार रूठे हुये मजदूरों तथा बिगड़े हुये मालिकों का समझौता कराया है और कहा है कि इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध पिता पुत्र का सम्बन्ध है। गान्धी जी किसी को दुःख देना नहीं चाहते इसी लिये वे जमींदारी प्रथा को उड़ाये बिना

ही उन के विचारो मे परिवर्तन करना चाहते है।

गान्धी जी ने जब हरिजनो के दुःख को देखा तो उन से रहा न गया, और उनका दुःख दूर करने के लिये ही उन्हो ने अपने प्राण संकट मे डाल कर २१ दिन का उपवास किया। वे हरिजनो को भी उसी स्थिति मे देखना चाहते है जिस स्थिति मे अन्य पुरुषो को।

गान्धी जी को जर्मन और अंग्रेज भी उतना ही प्रिय है जितना भारतीय, बशर्ते कि सभी अहिंसा के सिद्धान्त पर विश्वास रखते हो।

गान्धी जी यद्यपि जन्म से है तो भी वे अहिंसा पर उतने कट्टर रूप से पालन नही करते जितना कि लोग। एक बार जब कि गुजरात मे प्लेग फैला तो वे भी सेवा करने के लिये वहा गये। उन से पूछा गया कि चूहो को नष्ट करना चाहिये कि नही ? गान्धी जी ने कहा कि वैसे तो अहिंसा का व्रत यही

सिखलाता है कि उन्हें नहीं मारना चाहिये, क्योंकि जीने का जितना अधिकार हमें है, उतना चूहों और पिस्सुओं को भी है, पर मैं ठहरा दुर्बल मनुष्य मात्र, मुझे अपने जीवन की रक्षा की अधिक चिन्ता है, इसलिये प्लेग के चूहों को नष्ट करना ही मैं अधिक ठीक समझता हूँ। इसी तरह एक बार गान्धी जी ने अपने आश्रम में एक रुग्ण बछड़े को मरवा कर उस की पीड़ा का अन्त करवा दिया था। ये हिंसायें भी उन के जीवमात्र से प्रेम करने की सूचक हैं।

अमेरिका के प्रसिद्ध पादरी रेवरेण्ड होम्स गान्धी जी के विषय में लिखते हैं कि आज हम अमेरिका निवासी उन्हें बुलाना चाहते हैं कि वे आकर हमें ईसाईमत का वास्तविक अर्थ समझा जायें। इस के साथ ही वे फिर लिखते हैं अमेरिका निवासी यह भी देखना चाहते हैं कि उन के वे दो अस्त्र कैसे प्रबल हैं, जिन के सहारे वह एक अशिक्षित एवं धनहीन देश की ओर से लंगोटी लगाये, नंगे पैर, जरा सी खजूरें और प्याली भर बकरी के दूध के

बीच संसार की एक महान् शक्ति से राजनैतिक आर्थिक लड़ाई लड़ रहे हैं।

पादरी होम्ज ने एक और घटना का भी वर्णन किया है जिस से यह पता लगता है कि गान्धी जी अहिंसाव्रत व परमात्मा में कितना अटूट विश्वास रखते हैं। वह घटना यह है - गान्धी इरविन सन्धि के बाद जब एक बार तीन हिंसावादियों को फांसी चढ़ा दिया गया था उस समय कुछ हिंसावादी क्रान्ती ने महात्मा जी के पास आये और कहने लगे कि आप ने गान्धी-इरविन सन्धि के अनुसार उन तीन हिंसावादियों को बचाने की कोशिश क्यों नहीं की। उस समय उन हिंसावादियों में प्रतिहिंसा के भाव इतने बढ़ गये थे कि अगर गान्धी जी के मित्र उन की रक्षा न करते तो वे उन्हें मार चुके होते। बाद में उन लोगों ने जब कांग्रेस में अपना प्रतिनिधि भेजने की आज्ञा मांगी तो गान्धी जी ने उन्हें बुलवा लिया। गान्धी जी ने उन की बातें बड़े धैर्य से सुनी और फिर बड़ी धै

नम्रता से महात्माओं के समान बोले "यदि आप मुझे मारना चाहते हो तो खुशी से मार डालिये। मैं किसी से शिकायत न करूंगा। मेरा कोई रक्षक नहीं, सिर्फ परमात्मा ही एकमात्र रक्षक है। मुझे कुछ लोग मूर्ख कहते हैं क्योंकि मैं अपने शत्रु से भी प्रेम करता हूं। यह तो मेरे जीवन का ध्येय है। मुझे अब बलिदान करने को कुछ भी नहीं रहा। मेरे पास कोई भी सांसारिक वस्तु नहीं। मैं तो भिखारी हूं। मेरी एक बात अवश्य है। वह यह कि जिस दिन भारतवर्ष अहिंसा के सिद्धान्त से हट जायगा, उसी दिन मैं अपने जीवन को नष्ट कर दूंगा। यदि तुम्हारा यह कहना है कि मैं तुम्हारी हानि कर रहा हूं, तो तुम्हें ऐसा कहने का हक है। परन्तु मेरा यह धर्म है कि तुम्हें पारस्परिक प्रेम एवं सत्य का पथ दिखाऊं। मेरे पास तुम्हारे लिये सिवाय प्रेम के कोई वस्तु नहीं। यही मेरा हथियार है।"

महात्मा जी का प्रार्थना में दुर्ग

जिज्ञासु हैं। अब वह यह कहने लगते हैं कि बिना ईश्वर-प्रार्थना के मैं कुछ कर भी नहीं सकता, उस समय उन के मुख पर अलौकिक तेज सा दृष्टिगोचर होता है।

महात्मा जी सत्य की व्याख्या के लिये प्रह्लाद का उदाहरण देते हैं। सत्य के लिये प्रह्लाद अपने पिता से अलग हो गया, उस ने अपने पिता के अनेको अत्याचार सहन किये, किन्तु अपने सत्य को उस ने इतने महान कष्टों के सहन के बाद भी बचाया। हमें इस बात पर यहां विचार नहीं करना है कि सत्य से प्रह्लाद का क्या आशय था। वह पिता द्वारा दिये गये दुखों का बदला लेने की अपेक्षा मरना पसन्द करता था, किन्तु अपने सत्य को छोड़ना नहीं चाहता था। इतना ही नहीं, प्रह्लाद ने पिता के अत्याचारों को प्रसन्न होकर सहन किया, और अन्त में उसे वही सत्य प्राप्त हुआ, जिस के लिये उस बालक को सत्याग्रह करना पड़ा था। महात्मा जी



ओ मानव!

यह चाह अरे, हैं महाभ्रान्ति
है पागलपन है नीच राह
हे मानव तू तो महाशक्ति
तेरा यह कैसा पतन आह

२

हे मानव, अब तू सँभल जाग
कर मत अपना तू तिरस्कार
खोकर अपना तू गर्व मान
किसका पाएगा हाय, प्यार

मिट्टी के पुतले क्षुद्र अरे,
करता तू उनकी तीव्र चाह
पर तुझे नहीं मालूम अहा,
कितनी जघन्य यह घृणित राह

४

ओ ईश्वर के अवतार शुद्ध
हे नित्य बुद्ध बन्धन विहीन
अविकल त्रिभुवन हैं विकल देख
तुमको मलीन औं हीन दीन

५.

क्षणभंगुर भौतिक सभी वस्तु
तू भाग रहा ले प्राप्ति चाह
उर में तेरे दिनरात हाय,
होता हैं भीषण उग्र दाह

६.

ओ मानव, इतना घोर पतन
यह मानवता का तिरस्कार
उठ जाग तोड़दे वे बन्धन
ले स्वयं किया रे, जिन्हें प्यार

कर सकता तुझको कौन बद्ध
तू सर्वशक्ति तू महाकाल
हां, निज को सकता स्वयं बांध
तुझसे प्रबद्ध दिग्देश काल

८.

ये लघु बन्धन तू इन्हें छोड़
तू बांध सकल संसृति विशाल
अभिनन्दन हित तव हाथ जोड़
भू व्योम खड़े हो विनतभाल

९.

हे महाकाल हे महाशक्ति
हे महा प्राण सुषमानिधान
तव सुषमा से ही मंजु चन्द्र
मुसकाता करता नृत्य गान

१०

तेरे स्वागत को उषा ओढ़
साड़ी सिन्दूरी प्रति विहान
मुसकाती छवि बांकी निहार
गाती है स्वागत मुग्ध गान

तेरे स्वागत में गान मग्न
नचती सरि निज को भूल भूल
भरता निर्झर ले स्नेह भार
हँसता डालों पर फूल फूल

१२

तेरा नीराजन निशा मुग्ध
है करती ले अगणित प्रदीप
तू विभु की कृति है धन्य धन्य
रे, कहाँ पाप तेरे समीप

१३

निज कर से निर्मित यह कारा
तू तोड़ तोड़ मानव महान
गाता क्यों तू लघु चाह गान
गाता त्रिभुवन तव कीर्तिगान

प्रीतम-कुटीर
१ अक्टूबर ५४
बिजनौर
Z

वाल्मीकि और रामायण

अद्भुत सा उनका दृश्य - तमसा तट। तमसा के तीर पर [illegible] शिष्य के साथ मुनि वाल्मीकि। चलते चलते एक साफ सुथरा घाट (तीर्थ) दिखाई दिया उनको। और शिष्य से कहा - देखो भरद्वाज, यह कैसा सुन्दर घाट है, इसमें [illegible] जल है और [illegible] है जैसे कि सज्जन का मन। अपना कलश तुम यहीं रख दो और मेरा वल्कल मुझे दे दो। मैं तमसा के इसी उत्तम तीर्थ में स्नान करूँगा।

शिष्य ने गुरु को वल्कल दे दिया और मुनि वाल्मीकि शिष्य के हाथ से वल्कल लेकर नदी में घुस गये। नदी के दूसरे तट पर वन

विपुल जल था। मुनि देर तक जल में विचर-
ण करते हुए इस जल की शोभा को दे-
खते रहे। जल और लहरों की [illegible]
बना कर एक दूसरे का आलिंगन किये
रहते हैं। मृदु मन्द समीर का झोंका आता
है और वृक्षों की पत्ता पत्ता को चञ्चल बना
कर चला जाता है और इधर से आकाश
वाले मौन शान्ति को भंग कर रहे हों न
इधर से बरसती हुई वह मौन शान्ति इस वन
वृक्ष पर पैर रखते हुए मुख को उठाता है।
नहीं तो स्थान स्थान पर जो वाला पक्षियों
की चहचहाट का और क्या अर्थ?
मुनि के कानों में एक सुन्दर शब्द सुना और
जब सहसा मुनि की दृष्टि जो उधर को उठी तो
देखा कि एक निरशङ्क निर्भय श्वेत कमल अपने
कन्द से आकाश में उड़ा चला जा रहा है।
प्रभाव के उन्माद में वह वृन्त कुसुम छोड़
निकल कर रहा है और स्वच्छन्द-गति

[illegible] बिखर रहा हो और प्रकृति कितनी सुन्दर है [illegible] हा देखो वह एक [illegible] है [illegible] उन्माद [illegible] [illegible] है [illegible] है। [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] प्रकृ ति के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

— [illegible] एक [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करके [illegible] [illegible] — एक [illegible]।

दूसरे ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

और फिर तीसरे ही [illegible] [illegible] [illegible]

कर्तव्य

वह करुण चीत्कार।

हेय यह क्या परिवर्तन? अभी तो सारा वन और सारी प्रकृति इस विहग-सी होकर नाच रही थी जो आनन्द अठखेलियां करता था, प्रकृति के प्रति एक आकर्षण का प्रदर्शन ही प्रवाह हृदय के किन्हीं कोमल तारों को झनझना रहा था। और अब एकदम यह क्या हो गया। चीत्कार से सारा जंगल क्यों रुदन [illegible] करता है, प्रकृति क्यों रूठी रूठी [illegible] करुण स्वर में विलाप कर रही है— और सब का दिल भी — जो पहले आनन्द विभोर हो नाच रहा था, अब क्यों शोकाकुल होकर बोल रहा है। यह क्या हो गया? ओह! नियति के सहचारी इस कुटिल ने यह कोमल विहग होगई और वह कौन अब [illegible] होकर जमीन पर पड़ा है। [illegible] से उसका शरीर छिद चुका है।

इस प्रकार आखेट हुआ। मारे गये हंस पक्षी को देखकर जमीन पर लोटता देखकर क्रौंची और वाल्मीकि के मन में करुणा का संचार हुआ। मुनि सहज ही करुण प्रकृति। और उस पर यह क्रौंच मादा का हृदय विदारी चीत्कार। जब इस चीत्कार की प्रतिध्वनि के रूप में सारा का सारा जंगल ही उस आखेट को शाप दे रहा है जो करुणामय कवि ही मूक बना रहे। जब शोक और रोष हृदय में न समा सके तब अकस्मात् ही कवि के मुख से निकल पड़ा —

> मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा
> यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधी काममोहितम्॥"

— और मुनि के मुख से यह श्लोक क्या निकला कि यह तो प्रभु अनादि लीला के लोको के लोकवार अमर होगया। रे निषाद। अब हमारे [illegible] ही तपस्या क्यों न करले कितने ही

मुक्त और भले बिरले ही प्रमाणित करते हैं,
करते हैं, पर तूने यह एक अकेला ऐसा का
काम किया है कि सहृदय मनुष्य जान भी जाय
इस प्रकार तड़प कभी तुझे प्रकट नहीं कर सकता।
तुझे सैकड़ों जन्म जन्मान्तरों तक भी मुक्ति प्राप्त
नहीं होगी और अब तू इसीलिये समाज
में भटकता रहेगा।

इतना कहा शाप। x x x

वे मुनि के मुख से अचानक ही यह
वचन निकले तो मानो पृथ्वी उनके तल रहे थे
कि मैं क्या कर गया हूँ। शाप दे कर जब
उन्हें ध्यान आया तो वे दौड़ कर गये कि मेरे
मुख से क्या निकल गया। हाय रे। मैंने यह
क्या कर दिया। उस क्रोध-से पक्षी को उस काम
में मार दिया तो मुझे क्या अधिकार था कि मैं
उसके जीवन में ऐसी भयानक ग्लानि कर दूँ।
कौन जानता है कि उस पृथ्वी के मनुष्य
के सार ऐसे ही होते हैं आकर इस प्रकार

है क्रौंच के इन दो [illegible] है। पर [illegible]
कौन जानता है कि इस क्रौंच ने ही आदिम जिसने
दुःखों का जो बड़ा भारी जाल बना है — इस
पक्षी का मारा जाना और [illegible] और उसके
दुःखों के [illegible] में बहुत बड़ा हिस्सा
है। कुछ बाद में [illegible] की क्या आवश्यकता
थी? उस पक्षी के शोक में आप रोकर यह
क्या कह डाला।

मुनि कुछ देर के लिए मौन हुए और
उन्होंने अपने शिष्य से कहा

पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा॥

अब क्या किया जाए।

जब एक चिन्ता खत्म हो जाती तो दूसरी
भी कम नहीं होता बस स्नानादि सब [illegible]।
मुनि इसी चिन्ता में मग्न हुए जल्दी ही लौट
आए और [illegible] शिष्य भरद्वाज को कलश थमा
[illegible] दिया।

थोड़ी देर बाद।

मुनि अपने आश्रम में [illegible] बैठे थे कि [illegible] [illegible] [illegible] आकर उपस्थित हुए — मुनि से भेंट करने के लिये। [illegible] को आश्रम में आकर देखकर [illegible] आश्चर्य-चकित से [illegible] हो गये और [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] हुआ। [illegible] आसन पर बैठकर [illegible] मुनि को [illegible] का [illegible] किया। मुनि बैठ तो गये, पर उनके मन में [illegible] नहीं [illegible] रहा था — [illegible] में [illegible] हुआ [illegible] [illegible] [illegible]। — [illegible] से [illegible] के बिना किसी कारण के [illegible] [illegible] किया। और फिर [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। — [illegible] [illegible]। [illegible] मैं [illegible] [illegible] [illegible]।

— मुनि [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible]

[illegible] थे। ब्रह्मा ने मुनि की अद्भुत [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] — कहते हैं न। —

'[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥'

— और जब हँस के बुध कहा — सत्कुल। तुमने निश्चय ही यह श्लोक बना डाला है। इसमें लोक विचार की [illegible] [illegible] है। सच्चे [illegible] [illegible] में ही तुम्हारी सरस्वती प्रकट हो जाती है। तुम्हारे शब्द [illegible] प्रकाशित [illegible] है। हे [illegible]। अब तुम भगवान् राम के चरित का वर्णन करो। जो नारद तुमसे कह चुके हैं, उस [illegible] आदि [illegible] रामायण के विषय में तुमने जो कुछ सुना है — उसे कविता बद्ध करो। तुम्हें और जो कुछ ज्ञात नहीं है वह भी तुम्हें सब ज्ञात हो जायगा — मैं तुम्हें ऐसी अन्तर्दृष्टि प्रदान करता हूँ। तुम श्लोक बद्ध रामायण लिखो — जब तक इस महीतल पर पर्वत खड़े हैं [illegible] प्रवाहमान हैं तब तक तुम्हारी [illegible]

रामायण कथा लोक में प्रचलित रहेगी। तुम प्रबुद्ध कवि हो।" यह कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और इधर मुनि विस्मित हो सोच-ते रह गये — कैसा अनुपम मेरा श्लोक बन गया है। जब वह भी अचरज में - शोक में तपस्वियों का अचानक सम्भव है। मुनि के आश्चर्य का ठिकाना न रहा और इधर शिष्यों ने प्रसन्न हो कर बार बार इस श्लोक का गाना शुरू किया।

महर्षि ने समाधान ज्यों पदों में पढ़ के अपने श्लोक का गान किया वह शोक श्लोक हो गया है इस प्रकार बतलाया। महर्षि की इच्छा हुई कि मैं इसी छन्द के श्लोकों में रामायण का निर्माण करूं। और तब उन्होंने समान पदों से वाल्मीकि ने श्लोकों के रूप में यशस्वी राम का चरित लिखा।

X X X

हमने अभी देखा है कि ब्रह्मा ने मुनि को अन्तर्दृष्टि प्रदान की। यह अन्तर्दृष्टि क्या है— जिसके द्वारा अन्तःकरण प्रखर और आत्मदर्शन प्रकाशित होता है।

अर्थ के कौन ग्रहण करता है यदि सहृदय पाठक भी
पात्र मनुष्य के साथ न हो क्योंकि काव्य में प्रायः
दुख शब्द का सीधे रूप में नहीं कह देते कि
अमुक बड़ा उपकार किया है फिर आनन्द की
उत्तर कैसे ग्रहण किया जाय यहीं तो मनोविज्ञान
और उसके अध्ययन की आवश्यकता होती है
यहीं तो कवि की आवश्यकता है कवि अन्तर्दर्शी है-
रसज्ञ पाठक प्राप्त है एक वह एक जगह बैठा
हुआ अपने मानस चक्षु के सामने सब संसार का
रहता हुआ पाता है और बिल्कुल स्पष्ट रूप से देखता
है कि कौन क्या कर रहा है- और क्या सोच रहा है
तभी तो एक नाटक में या एक काव्य में वह
इतने भिन्न भिन्न पात्रों की सृष्टि कर सकता है।
जहाँ एक राजा के मनोगत भावों का कवि ज्ञान
रखते हैं, वहाँ साथ होकर एक रंक भी। जहाँ
एक भाविक के भावों को कवि जान रहे हैं, वहाँ
एक दुष्ट पापी के भी,- जहाँ राम के, वहाँ रावण
के भी। यही कवि की अन्तर्दृष्टि है, इसके बिना
कवि बनता नहीं। यही कवि की अन्तर्दृष्टि है।

यह एक प्रकार का अर्थ वस्तु है जिसकी जाँच कहीं भी आवश्यक नहीं होती। इसका सामान्य अर्थ है — यह तो सामान्य व्यक्ति भी जान लेते हैं, पर नेपथ्य के पीछे क्या हो रहा है — इसे जानने के लिए अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता है। सामान्यतया तो यह विचार जाता है कि मनुष्य के मन के आन्तरिक भाव उसके मुख पर झलकने लगते हैं मुख मन का दर्पण हो पर यह हमेशा सत्य नहीं उतरता। कई बार देखा जाता है कि मन में कुछ और बाहर क्रिया में कुछ मनुष्य अपने भाव को छिपाने की चेष्टा करता है और तब वह सामान्य लोगों के प्रति उन शब्दों का आश्रय ग्रहण किया करता है जो उसके हृदयगत भाव के सर्वथा विपरीत होते हैं। एक कवि या कलाकार ने यह लिखा— 'उपदेश बहुत किये जाते' पर इसका यह अर्थ नहीं है कि आप तो उपकारी धार्मिक पुरुष हैं और आपके उपकार की संख्या इतनी अधिक है कि उसका वर्णन भी नहीं किया जा सकता। किन्तु इसका असली अर्थ यही है कि आपने कुछ नहीं किया। पर इस ओड़ी

ग्रन्थ में शक्ति हो जो रस प्रभावशाली तथा व कविता
करने में समर्थ हो सके — कहना चाहिए कि कवि
की दर्शन शक्ति जब इतनी विकसित हो कि वस्तुओं
अन्तर के रहस्य को लिखने में प्रेम जागा।

साहित्य विशारदों का मत है कि कविता का
जन्म दो ही अवस्थाओं में होता है — एक तो
मनुष्य अत्यधिक आनन्द में हो अथवा अत्यधिक
शोक में। मनुष्य किसी सुन्दर दृश्य को देखता है
और प्रकृति में कुछ ऐसा अभिनव परिवर्तन देखता है कि —
और वह ऐसा परिवर्तन कि मनुष्य के हृदय पर अपनी
छाप छोड़ जाता है तब मनुष्य की अभिलाषा होती
है कि उस दृश्य विशेष के वह औरों के सामने
प्रकट करे। यदि हम अपने शत्रु पर विजय प्राप्त कर
लेते हैं तो हम नाचते हैं गाते हैं इस अन्य प्रे-
मिक विविध ढंग अपनाते से अपना आन्तरिक हर्ष
को प्रकट करते हैं। यदि कोई और हमारा सम्बन्धी
कोई प्राणनाशक कार्य करते दिखता है — तब भी
शोक उत्पन्न होता है जैसे कि मानो खेद इतना ही
न रहा हो कार्य किया हो। और उसकी उस प्रकार

हम रूप-गायन लेकर नाटक रचनाओं के रूप [illegible]
प्रकट करते हैं। इस प्रकार निस्सन्देह दर्शन और
आनन्द जहाँ अन्य ललित कलाओं को जन्म देता
है वहाँ कविता को भी। यह सत्य केवल [illegible]
प्रमाणित नहीं है - वह दुःख और आँसू [illegible] -
उस में भी कविता को जन्म देने में [illegible]
बड़ा कारण तो आनन्द में तो यह स्वभाव होता कि मनुष्य
उसको प्रकट करने के सामर्थ्य में ही इतना [illegible] जाय
कि वह अपने आपको भूल जावे। दर्शन को प्रकट करने
के लिये तो अवश्य [illegible] चाहिये है पर शोक प्रकट
करने के लिये तो इस मनुष्य नाम के प्राणी [illegible] के पास
सिवाय रोने के और है ही क्या। खुशी के मारे आप
बैठकर [illegible] [illegible] उठा लीजिये - [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] ही [illegible], - सब ठीक है - लेकिन
जनाब, क्योंकि खुशी का मौका है। पर शोक के [illegible],
[illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी
[illegible] है। - आप [illegible] [illegible] में, खुशी के
[illegible] [illegible] [illegible] सकते हैं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],

राजहंस

यह श्लोक के जनक [illegible] [illegible] दोनों के [illegible] आदर भी नहीं कहा सकते यह कितनी रमणीय प्रस्तावना है। अच्छा चाहे कितना ही [illegible] क्यों न हो, [illegible] उसको [illegible] [illegible] [illegible]। ऐसे समय [illegible] [illegible] के और शब्द हैं [illegible] [illegible] प्रति न भी [illegible] [illegible] क्रौंच [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] व्याध की [illegible] को [illegible] और [illegible] क्रौंच-मिथुन का वह [illegible]-विलाप। [illegible] [illegible] [illegible] ही [illegible] उस [illegible] निषाद का [illegible] रहा है, तब [illegible] के [illegible] [illegible] से [illegible] भी शब्द निकल पड़ा। वह शोक-जनित शब्द ही [illegible] का सबसे पहला श्लोक है, वही संसार की आदि-कविता है —

समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा।
सोऽनुव्याहरणाद्भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः॥

(महाकवि कालिदास के शब्दों में —
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः
श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः॥)

मन तो अलौकिक ही रहा। इसके प्रमाणस्वरूप हमारे पास एक और भी प्रमाण है। आधुनिक हिन्दी के महाकवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त कहते हैं—

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप
बही होगी करुणा अनजान॥

और एक अंग्रेजी के कवि भी कहते हैं—

'most wretched men
Are cradled into poetry by wrong,
They learn in suffering, what
teach in song'

इस प्रकार साहित्य के इतिहास में शोक से कविता की उत्पत्ति मानने वालों की कमी नहीं है। यहाँ तक कि महाकवि भवभूति तो यह कहकर ही बैठे हैं— कि रसों में करुण रस को छोड़कर और कोई रस है ही नहीं। अन्य जो और रस हम भी मानते हैं, वह निमित्त-भेद से भिन्न प्रकार करुण रस ही है, और

कि मेरा बुलबुल का देश — [illegible] कैसे
निराट [illegible] है —

> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]

सामान्यतया काव्य के दो भाग किये जा सकते हैं। एक तो वे जिनमें केवल भावों की व्यंजना होती है और दूसरे वे जिनमें [illegible] व्यक्तियों या वस्तुओं का वर्णन [illegible] है केवल भावों की व्यंजना करने का यह [illegible] है कि वह [illegible] और [illegible] समय में [illegible] न आये। [illegible] का प्रभाव [illegible] भावना उत्पन्न [illegible] के भाव में ऐसी शक्ति है जिससे उसके अपने सुख दुःख कल्पना और जीवन के अनुभव देश काल के लोगों के विभिन्न हृदयों को समान प्रकाशित हो जाते हैं। इसी प्रकार जो दूसरी तरह के भाव

होते हैं उनमें ऐसी शक्ति होती है कि उनके रचित ग्रन्थों में सारे देश और समग्र युग का लाभ और अनुभव स्वयं प्रकाश प्रकट होता है और समाज के साथ साथ उसको सदा के लिये लाभ उठाते हैं।

इसी दूसरी श्रेणी के कवियों का महत्व बढ़ते हैं। सारे देश और सारी जातियों की सरस्वती आज उन्हें अपनाती है और इनकी रचना का किसी खास विशेष की रचना कहने का भी नहीं [illegible] मालूम पड़ता है कि उनके समान बड़े नदियों के समान पृथ्वी के [illegible] पैदा होकर उसी पृथ्वी देश को अपनी प्राकृतिक धन प्रदान करते हैं। शकुन्तला और कुमार सम्भव में हमें कालिदास के रक्त [illegible] का विशेष परिचय मिलता है किन्तु देखते हैं कि रामायण और महाभारत भागीरथी और हिमालय के समान सारे भारतवर्ष में व्याप-[illegible] हो रहे हैं और व्यास और वाल्मीकि केवल उपलक्ष्य मात्र हैं। जिस प्रकार [illegible] [illegible] का सम्पादन किया, अथवा विश्वामित्र प्रकाश किये,

राजहंस

और एक दूसरा बड़ा पुराना ग्रन्थ महाभारत लिया — जिसके विषय में लोगों की धारणा है — 'न [illegible] ही लोके [illegible] न [illegible]।' — इस ग्रन्थ पर व्यास नाम के कोई एक लेखक कभी पैदा हुए होंगे - ऐसा विश्वास नहीं होता वाल्मीकि के विषय में भी ऐसा ही है पर [illegible] और प्रकट हो जाता है कि व्यास और वाल्मीकि किसी का नाम भी नहीं। यह तो एक उदाहरण से हम [illegible] में आने वाले [illegible] हैं और इन दोनों का लोगों का साहित्य में [illegible] देश व्यापी प्रभाव है कि इनके [illegible] रचना। कवियों के नाम लापता होगया है और इस तरह से सब आगे कालों के ही भीतर छिपा गया है।

हमारे देश में जैसे रामायण और महाभारत हैं वैसे ही [illegible] ग्रन्थ और [illegible] में [illegible] और 'रघुवंश', [illegible]। कवि [illegible] और कवियों के अपने रचना में अपने देश लोगों की अपनी [illegible] आदान-प्रदान किया — एक [illegible] लेकर [illegible]

थे तब जैसे कि बाद कैलाशों को महावीरजी
प्रस्थान में हुआ था। ये सब विदेशी इस्लाम
की निष्ठुर दुर्बल नहीं थे अतएव कि ग्रीस
और रोम प्रभृति सारी भूमि में आज की भाषाओं में
आज सब साक्ष्य है या नहीं; किन्तु ये निश्चय
है कि रामायण और महाभारत में आलोचना का और
कोई भाव भी शेष नहीं रह गया है

इसीलिए शताब्दियों से शासक बदलते चले आ
रहे हैं किन्तु रामायण और महाभारत का स्थान भारत
वर्ष में लेशमात्र भी परिवर्तन नहीं होता। प्रतिदिन
सवेरे और शाम उनका पाठ होता है
और महाभारत ~~से लेकर~~ भी तुलसीदास राज के
महल तक में सर्वत्र उनका प्रचार समान है
अतः है उन ग्रन्थ कवियों को जिनके नाम जाने
के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात किन्तु उनकी वाणी भारतीयों
नर-नारियों के लिए आज भी जीवन शक्ति और
शान्ति प्रदान कर रही है और सैकड़ों प्रकार शताब्दियों
की प्राचीन सुन्दर निधि जिस प्रकार भारतवासियों
के हृदय-मन्दिर का ध्यान भी उसी प्रकार रहती है

ऐसी अवस्था में रामायण को केवल मात्र काव्य कहने से काम नहीं चलेगा यह इतिहास भी है किन्तु एक व्यक्ति का इतिहास नहीं है क्योंकि वाल्मीकि ने इतिहास समाज विशेष पर अवलम्बित रहता है यह रामायण भारत के जीवन का इतिहास है, और इसी कारण आप समय बदले रहते हैं पर इस इतिहास का अन्त नहीं होता आज भी जो साधना का आदर्श और संकल्प हैं उनका ही इतिहास इस महाकाव्य के राम चरित में चिर काल के सिंहासन पर विराजमान है।

हम राम को भी आज आदर्श मानते हैं। पर पुरुषोत्तम सामाजिक महत्ता को [illegible] [illegible] स्वभाव है और इसके लिए उनके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

रामायण के सुन्दर विकास का इतिहास साक्षी है। महाभारत का युद्ध कुरुक्षेत्र में हुआ था और रामायण का लंकाकाण्ड वाला युद्ध लेकर है — भारत के बाहर में हुआ था। रामायण

भी आर्य जब उत्तर प्रदेश ईरान आदि देशों में
आगमित में आर्य ने सबसे पहले उन्हें कुरुक्षेत्र
में ही युद्ध करना पड़ा होगा और फिर जब
विजय करते-करते उन्होंने आगे जा कर दक्षिण के
बाद दक्षिण विजय के लिए प्रयाण किया तब
ठीक रामायण - हुई। ये बातें उन्हें एक अत्यन्त
प्रकट और प्रत्यक्ष रूप से युद्ध करना था। जैसा
मेल न रखना। इसलिए महाभारत का पहले होना
स्वाभाविक। और दूसरा कारण यह है कि जिस प्रकार
रामायण में अलंकार उपमा अनुप्रास का बाहुल्य
है और कविता जितनी परिष्कृत है उतनी महा-
भारत में नहीं। महाभारत में तो द्रौपदी उवाच,
'युधिष्ठिर उवाच' इत्यादि रूप में लिखे गये हैं
जो रामायण में यह सब भी बाद बहुत ही अलंकृत-
रूप सा है। जीवन में निर्दयता क्रूरता और युद्ध
की भयंकरता - जो कि समाज के आदिम निवा-
सियों के जन-जीवन की सूचक है - महाभारत
में मिलती है, रामायण में वैसा नहीं है इसके

लिये ऐसा लगता है कि महाकाव्य पहले है और रचनाएं बाद में।

पर हम महसूस करते हैं कि राम और रावण का युद्ध तो [illegible] प्राय सभी रचनाओं का नहीं है बल्कि राम रावण का युद्ध है [illegible] — यह प्रत्यक्ष करते है। कौरव पांडव का महाभारत — इसमें हम देख पाते नहीं पर इसमें कोई शक नहीं कि वह युद्ध के प्राय विकल्पों के बीच में हुआ था। इसमें भेद जो प्रतीक जागती है वह प्रतीक प्रकार है — यह पूरी ठीक नहीं उतरती। यहाँ तक भाषा के परिवर्तन की बात भी के अनुरूप थी। उसके विषय में भी इतना कहना आवश्यक है कि महाकाव्य प्राचीन से ही कुछ रहस्य रूप में गुप्त रहते हैं उसकी अभिव्यक्ति ऐसी रही है कि लोग इसे स्पर्श करके इसकी अभिव्यक्ति करने का साहस नहीं कर सके न जाने — कुछ भेद सा इसमें छुपा कर दिया गया

तो फिर से ग्रन्थ ? पर रामायण शुरू हुई तो यह
और गायन के रूप में रही है। वहीं इसे
गायक लोग ही इस्तेमाल करते रहे हैं। इसका
प्रमाण स्वयं रामायण में ही मिलता है —

अगृहीतां ततः पादौ मुनिवेषौ कुशीलवौ ॥

तौ तु गान्धर्वतत्त्वज्ञौ स्थानमूर्च्छनकोविदौ
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नौ गन्धर्वाविव रूपिणौ ॥

कुशीलव शब्द संस्कृत में गायक के लिए आता है, यहाँ 'गान विद्या में निपुण' इस शब्द का प्रयोग समझा जा सकता है। तो कुशीलव वाल्मीकि के पास आए और वाल्मीकि ने उनको सारा ग्रन्थ उन्हें कण्ठस्थ करा दिया व दोनों स्थान-स्थान पर रमा (?) लोगों में आगाम इसका गान करते और इन मधुर श्लोकों को सुनकर लोग आनन्दित होते। फिर धीरे-धीरे यह गीत भी लोककथा के रूप में चली। इस प्रकार जब सारी रामायण गायकों के हाथ में आ गई, तो यह आवश्यक था —

कि जिस हृदय को सुन्दर गीता अत्यधिक भावावेश में आजाते हैं और कुछ बन जाते हैं उस हृदय को [illegible] स्वप्न अन्तरंजित [illegible] करते हैं। उन्होंने देखा कि [illegible] लोक पसन्द आते हैं और ऐसी [illegible] अन्य हैं [illegible] श्लोकों का [illegible] किया [illegible] उनकी आवश्यकता आती गई। क्यों कि हम देखते हैं कि वाल्मीकि [illegible] श्लोकों का स्वीकार किया है [illegible] आधार पर [illegible] जाती है। [उदाहरण [illegible] दे रहे हैं— ले०] इसका अर्थ यह है कि [illegible] शैली ही पसन्द आती थी। साथ ही हम यह देखते हैं कि रामायण के [illegible] में [illegible] विकासित प्रवृत्ति [illegible] पसन्द आते हैं जबकि वाल्मीकि ने तो [illegible] और [illegible] सारी रामायण अनुष्टुप छन्द में ही लिखी थी। इसलिए यहाँ [illegible] कि यह रामायण उन्हीं गायकों की है जिन्होंने स्थान स्थान पर जाकर अपना मधुर कंठ से श्लोक गा-गाकर

लोगों में प्रचार किया था।

पर इस प्रकार रामायण गायकों के हाथों में पड़कर रही और कथानक उसमें जोड़कर गाते रहे — इसका निश्चित काल कहना कठिन है। फिर भी इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि आधुनिक रूप में जो इस समय हमें उपलब्ध होती है वह प्राकृत महाभारत से अवश्य प्राचीन होगा पर महाभारत के वर्तमान रूप में आने से पहले रामायण अपने रूप को प्राप्त कर चुकी थी और यह अनुमान लगाया जाता है कि ईसा से तीन शती पहले रामायण इसी रूप में थी जिसमें कि अब हमें दिखाई देती है। ईसा के तीन चार शती बाद तो बौद्ध विद्वान् वसुबन्धु और अश्वघोष के समय में रामायण का इसी रूप में होना अन्य प्रमाणों से सिद्ध है। इससे प्राचीन पहले के बुद्धकालीन ग्रन्थों में इसके अस्तित्व का कहीं नाम नहीं [illegible] बौद्धधर्म के अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ त्रिपिटक में [illegible] जातकों के रूप में जो प्राचीन कौशिक कथायें [illegible]

राजहंस

है उर्दू में एक नाटक का नाम 'दशरथ नाटक'
भी है, पर उसके पढ़ने से तो यही पता लगता है
कि इस नाटक का लेखक कम से कम आधुनिक
रामायण से तो परिचित नहीं था। तो फिर उसने
यह नाटक किस प्राचीन [illegible] लिखा? कल्पना
यही होती है कि नाटक इस रूप एक काव्य के
रूप में नहीं प्राप्त होगा [illegible] के पास सालों
के दो रूप में सुरक्षित रहा [illegible] और है तो
किसी एक उर्दू [illegible] विकीर्ण [illegible] * अज्ञात
लिपिक के लेखन ने 'दशरथ नाटक' लेखक [illegible]
यही बात हमारे इस पक्ष में सहायक है कि इससे
से लगभग तीन सौ वर्ष पहले रामायण न [illegible]
[illegible], पर ठीक ठीक निश्चित क्या है [illegible]
रामायण बनी, इसका निर्णय तो अभी तक नहीं
का पुरातत्व प्रश्न है।

X X X

रामायण की समालोचना का आदर्श अन्य
[illegible] के लिए दो रामचन्द्र का जीवन उनका पारिवारिक,

[illegible] का आदि तो अवश्य उठाते हैं या पूरी — [illegible]
इसकी समालोचना यथेष्ट नहीं हो सकती होकर [illegible]
प्रवृत्ति पर विचार करना होगा कि समस्त भारतीय
[illegible] भाषों में इन्हें किस भावना ग्रहण किया जा
सकता है। कोई विचार ही क्या [illegible] सीमा ही
[illegible] एक समग्र प्राचीन देश के इतिहास प्रवाहित
[illegible] काल के विचारों के बिना उसका हल नहीं सुलझा
तो यह अत्यन्त [illegible] विषय हो

साधारण लोगों की धारणा है कि भारत प्रधान
काव्य को ही [illegible] या महाकाव्य कहते हैं। जिस देश
में जिस समय वीररस को गौरव मिला उस देश में और उस
काल में स्वभावतः ही [illegible] वीरत्व प्रधान होगये हों
रामायण में भी कुछ भी कमी नहीं है और रामचन्द्र का चरि-
त्र भी [illegible] नहीं है [illegible] किन्तु तो भी रामायण में [illegible]
[illegible] की अपेक्षा भिन्न रस की प्रधानता मिलती है [illegible]
[illegible] नहीं है उसमें [illegible] [illegible] कुछ [illegible]
[illegible] [illegible] नहीं होते

[illegible] की [illegible] [illegible] [illegible]

राजहंस

काव्य की रचना हुई, सो बात भी नहीं। कवि वाल्मीकि के लिये रामचन्द्र भगवान नहीं मनुष्य था। विस्तार से सिद्ध करने के अवकाश नहीं है किन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि यदि राम पात्र में नर और [illegible] का [illegible] न कर देव और [illegible] का [illegible] किया जाता [illegible] का गौरव कम हो जाता और उसके काव्य में कमी आ जाती।

प्रथम सर्ग में ही जब वाल्मीकि ने काव्योपयुक्त नायक के लिये सब गुण सम्पन्न पुरुष के विषय में नारद से प्रश्न किया —

समग्रा रूपिणी लक्ष्मी कमेकं संश्रिता नरम्।

तब नारद ने कहा —

देवेष्वपि न पश्यामि कश्चिदेभिर्गुणैर्युतम्।
श्रूयतां तु गुणैरेभिर्यो युक्तो नरचन्द्रमाः॥

रामायण में इसी नरचन्द्र की कथा है किसी देवता की नहीं। रामायण में देवताओं ने स्वयं होकर मनुष्य का अवतार नहीं लिया है किन्तु मनुष्य ही अपने गुणों की उन्नति के कारण देवता बन गये हैं।

मनुष्य के पूर्ण आदर्श को स्थापित करने के लिये भारत के आदि-कवि ने इस महाकाव्य की रचना की है। और उस दिन से लेकर आज तक पाठक मण्डली बड़े आग्रह से इसका पाठ करती आ रही है। रामायण में दम्पति एक आदर्श विवाह का चित्र [illegible] वर्णित है पर इसमें न केवल उस आदर्श का अपि, केवल उस कवि का, अपितु सारे भारतवर्ष का [illegible] मिलता है।

प्राचीन लोग कहते हैं कि इस प्रकार के चरित्र यद्यपि अतिप्राकृत [illegible] पर इस बात को भी भुलाया नहीं जा सकता कि जिस समाज में आलोचना [illegible] समाज में जाती है और कल्पना प्रविष्ट हो जाती है। सत्य तो यह है कि जिस देश का जो आदर्श होता है उसको वही समझ सकता है। इसीलिए कोई निश्चित सीमा तक ही शब्दों को सुन सकते हैं, यदि [illegible] उन्हें [illegible] पाश्चात्य [illegible] के [illegible] अनुवाद कर जायें तो हम उनके [illegible], पर उस [illegible] को नहीं सुन सकते। इसी प्रकार यदि किसी कवि

ने किसी आदर्श का चित्रण किया है, तो यह समझना ही होगा चाहिये कि उस देश के लोग उस आदर्श को स्वीकार करते हैं और उसकी प्राप्ति में उन्हें विश्वास है।

अतः हम भारतवासी अत्यन्त प्राचीनकाल से मनुष्यत्व की पूर्णता में विश्वास करते आये हैं और कभी उसे काल्पनिक कहकर हेय नहीं समझा। इसी परिपूर्णता की आकांक्षा को उद्बोधित और पुष्ट करके वाल्मीकि ने रामायण को रचकर भारतवर्ष के भक्तों के हृदय को सदा के लिये मोह लिया है। भारतवर्ष यह नहीं कहता कि यह केवल काव्य कथा मात्र है। भारतवासियों के लिये उनके घर के लोग उतने सच्चे नहीं हैं जितने कि राम लक्ष्मण और सीता उनके लिये सच्चे हैं।

अन्त में, हम रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में इतना ही कहना चाहते हैं — "जो जाति खण्ड-सत्य को प्रधानता देती है और पूर्ण का प्रकृत का दर्शन लाप भूल जाती है वह समाज में अनेक उपयोगी कार्य करती है। पर मनुष्य-लोक उस जाति से ग्रहण कर नहीं

है जो यह कहती है — 'भूमैव सुखम्। सुखं नैव
विजिज्ञासितव्य।' — दुर्बलता ही दुःख है उसीको जानना
चाहिए। उनका कथन विज्ञान होता था मानव जाति
अपने दुर्बल स्वप्न कोमलता परमात्मा के प्रति तड़प से
[illegible] ऊपर उठ के पहचान धार्मिक प्रतिष्ठा
प्राप्त करने लगती। इसलिए उन्होंने अपने पर
विश्वास कर पर धार्मिक भाव किया है। इसमें
सौभाग्य जो जनपद का धार्मिक जो प्रभु
भक्त समर्पित है, उसका यदि हम स्मरण करें
[illegible] भक्ति रख रहे तो हमारे परमात्मा
[illegible]
प्रवेश कर . . तो'

चिर विरह की कहानी

वात सृष्टि के प्रारम्भ की है । उस समय सारी दुनिया एक थी — चीजों में इतना अन्तर न था जितना अब दिखाई देता है । एक चमकती नीहारिका मात्र थी जो घूम रही थी । [illegible] है [illegible] के का [illegible] हुआ ।

२

अब नीहारिका टूट चुकी थी । कोई कहीं आ पड़ा था कोई कहीं — लाखों करोड़ों अरबों मीलों का अन्तर हो गया था । पश्चिम को भी पानी ने बहुत दूर जा गिरी थी । उसे कारागार-सा मिला हुआ "[illegible]" । वह उस सुदूर स्थान में नजरबन्द था । वह उड़-उड़ पास होना चाहता था प्राणी के

गते में । रह रह कर याद आती थी उसे — उसकी वह चित-वन, वह बांकी झांकी, मधुमुस्कान, प्यारा स्वभाव —— ।
पर मिलने का कोई साधन न था । इतना व्यवधान, नज़र-बन्दी और सबसे बड़ी बात यह कि अब वह कुछ कुछ लज्जा भी अनुभव करने लगा था ।

विरह से व्याकुल वह तड़प रहा था । इस दुःखित अवस्था में वह अपने बालपन के साथी सूर्य और चन्द्र से मन बहलाया करता था । एक दिन उसने सूर्य को बुलाया और कहा - 'भाई, मेरा सन्देश प्राची के पास ले जाओगे ? तुम बहुत जल्दी चल सकते हो । रास्ता भी बहुत सीधा जाता है । देखो, प्राची को सब समझा कर कह देना कि यह अभागा तुम्हारे विरह में जल जल कर मर रहा है । वह मुझसे रूठी क्यों है, उसकी यह उपेक्षा क्यों है, मेरा क्या अपराध है । मैं अपना सर्वस्व, अपना सारा अपनापन उसके चरणों की भेंट चढ़ा चुका हूं । वह मेरे सपनों की रानी, मेरे मानस मंदिर की

प्रतिमा मुझ से रूष्ट क्यों है ? प्यारे भाई ! मेरे मन की अवस्था तो तुम भली भाँति जानते ही हो।

राह में तुम्हें अनेकों देश मिलेंगे। इन देशों में सबसे सुन्दर देश भारतवर्ष नाम का है। उसके निवासियों की आंखों से गर्व, विनम्रता एवं मृदुता टपकी पड़ती है। देवता भी वहाँ जन्म लेने को तरसते हैं। जगत्कर्ता भगवान स्वयम् अपनी उस अद्वितीय रचना पर मुग्ध हैं। कल चन्द्र कह रहा था कि देव सभा में भगवान ने यह विचार प्रगट किया है कि मैं उस सुन्दर देश में रहने का आनन्द लेना चाहता हूँ। और शीघ्र ही मानव देह को धारण करके मैं वहाँ अवतरित हूंगा। उसके सुन्दर सुरभित फूलों में, नृत्य करते झरनों में, गाती हुई सरिताओं में, प्यारी कोमल मिट्टी में कुछ दिन रहूंगा।

सुन्दरता के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है। और फिर तुम तो नौजवान ठहरे। और वह सुन्दरता तो ऐसी है कि स्वयं भगवान भी उससे आकृष्ट हैं। ऐसे सुन्दर

देश को पाकर तुम कहीं वहीं के न हो रहना। मैं जलते दिल का और निरन्तर रोते रहने से सूजी हुई आंखों का ध्यान करके आगे बढ़ते जाना।

पर अभी थोड़ी देर ठहर जाओ, जरा अंधेरा होने दो। मेरे पास से प्राची के पास जाते हुए कहीं तुम्हें कोई देख न ले। यदि किसी ने भी देख लिया तो बदनामी हो जायगी। दुनिया को उन्मुक्त प्रणय सह्य नहीं है। और अंधेरा होने पर भी सीधे मार्ग से मत जाना। क्योंकि यद्यपि रात को सब सो जाते हैं, पर ये तारे तो यही देखने को अपलक जाग करते हैं कि देखें कौन क्या कर रहा है? तुम्हें इनसे भी आंख बचा कर जाना होगा। इनका काम दिन रात चुगली करना और दूसरों को बदनाम करते रहना है।

३.

सूर्य तेजी से प्राची की ओर चला। जब वह प्राची के पास पहुंचा थोड़ा थोड़ा अंधेरा बाकी था। उसने प्राची की स्तुति की, देर हुई और पश्चिम का संदेश दिया।

प्राची उस सन्देश को सुन कर अपने अरुण अधरों से उपेक्षा की हंसी हंस ~~रही थी~~ दी।

इधर सुदूर स्थित पश्चिम ने जब मुस्कान देखी तो उसे कुछ आशा बँधी। पर उस अभागे को क्या पता था यह मुस्कान स्वीकृति की न होकर उपेक्षा की है।

प्राची ने सूर्य से कहा - मैं उसे नहीं चाहती। यदि मैंने हंस कर उससे एक दो मीठी बातें की थी तो उसने यह कैसे समझ लिया कि मैं उसकी हूं। मुझे वह पसन्द नहीं है। मैं उसके बंधन में नहीं बंध सकती। क्या दुनिया में किसी से अच्छी तरह बात करना भी पाप हो गया? मैं तो सबसे ही ऐसी बोलती हूँ।

सूर्य अब ज्यादा न सुन सका। क्रोध और विषाद से वह जलने लगा। जो पल पहले सौम्य दिखाई देता था, वह आग का गोला बन गया। उसे प्राची के पास ठहरे सात आठ मिनिट हो गये थे। वह एकदम निकल~~कर~~ चल दिया। यह भी भूल गया कि किस रास्ते

से जाता है। वह चला क्रोध से जलता पश्चिम की ओर। ज्यों ज्यों वह प्राची के बारे में सोचता था उसका क्रोध बढ़ता जाता था। कई घण्टे के बाद उसे चेतना आई। उसके मन में विचार आया कि मैं पश्चिम को जाकर क्या कहूंगा? एकदम गुस्से में आकर मैंने ठीक नहीं किया। मुझे प्राची को मनाना चाहिये था। शायद वह मान जाती। मैंने यह भी तो जानने का यत्न नहीं किया कि कहीं वह झूठ मूठ ही मान-लीला तो नहीं कर रही? अब क्या हो? चिन्ता से उसका मुंह पीला पड़ने लगा।

पश्चिम ने जब सूर्य को पीला मुंह किये हुए आते देखा तो वह सब कुछ समझ गया। उसका मुंह भी पीला पड़ गया। सूर्य उससे बिना कुछ कहे उदास सा समुद्र में जा पड़ा और सोचने लगा— "पश्चिम उस बदसूरत और बदमिजाज औरत के पीछे क्यों पड़ा है? इससे सौगुणा खूबसूरत भाग्यवती स्त्रियाँ उसके पैर चूमने के लिये तय्यार हैं।"

पर सूर्य को क्या पता— प्रेम उसी से किया

जाता है - जो दूर भागता है, ठुकराता है, उपेक्षा करता है। न मिलने पर नरक के लिये भी बड़ी कड़ी साधनायें की जाती हैं; मिलने पर स्वर्ग भी ठुकरा दिया जाता है।

सूर्य को इस रूप में देख कर पश्चिम बिलकुल शून्य सा हो गया। शोक की काली चादर ओढ़ कर अंधेरे में पड़ गया। उसकी सिसकियों से सारा ब्रह्माण्ड रात भर साँ साँ करता रहा। उसके आंसुओं ने सारी धरती को गीला कर दिया।

४.

पश्चिम किंकर्तव्यविमूढ़ था। सहसा उसे कुछ ध्यान आया। उसने सोचा - सूर्य को बात करने का ढंग नहीं आता। उसने चन्द्र को बुला कर अपना संदेश प्राची के पास ले जाने को कहा। यद्यपि चन्द्र भोला भाला बच्चा था; उसे ऐसे काम पर भेजना उचित नहीं था पर "कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।"

चन्द्र बच्चा तो था पर अत्यन्त प्रतिभा शाली

था। उसने खुशी खुशी से यह उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य स्वीकार किया। बच्चों को तो जो कहो एक दम करने को तत्पर हो जाते हैं।

वह चला प्राची की ओर। पर मन में रह रह कर सूर्य की असफलता का विचार भय उपजाता था। थोड़ा चला, लौट आया और पश्चिम से बोला कि कहीं उस औरत ने इसे भी वही जवाब दिया तो-। पश्चिम ने उसे फिर अगले दिन समझा बुझा कर भेजा। वह आज पहले दिन से कुछ और आगे बढ़ा पर फिर असफलता के भय से लौट आया। इस प्रकार वह कई दिनों तक पहले से कुछ आगे बढ़ता और लौट आता। पश्चिम उसे और उत्साह देता; वह भी अपने उर में बल सँजोता। दो धारायें समानान्तर उसके मन में बहतीं - उत्साह की धारा दिन प्रति-दिन उसे बढ़ावा देती तो एक अज्ञात असफलता के भय की धारा उसे विचलित करती।

महाकवि की जीवनी

कवि अपनी कविता से ही प्रसिद्ध हुआ करते हैं। उनके विषय में अगर कुछ लिखना हो, उन्हें उनके उस पहलू को दिखाना चाहिये, जिससे कवि अमर हो पाया है। इस लिये कवि की कविता के विषय में ही कुछ लिखना चाहिये; उसकी जीवनी लिखने का कोई प्रयोजन नहीं। इसीलिये भारत के प्राचीन कवियों का व्यक्तित्व सदा छिपा रहा है। परन्तु आजकल पश्चिम से एक लहर आई है। उसी के अनुसार भारतीय समझने लगे हैं कि अगर हमें अपने कवियों, नाटककारों के विषय में अगर हमें कुछ ज्ञात नहीं तो हमारा अत्यन्त दुर्भाग्य है। इस कारण हम आज

अपने पुराने यशस्वी कवियों की जीवनी का अनुस-न्धान करने में समय बिता रहे हैं। परन्तु तो भी कवि की जीवनी को अगर कोरा इतिहास न बना कर लिखें तो कुछ स्वाद आ सकता है। किसी पद्य से अगर हम यह अनुमान लगा सकें कि इसको लिखते समय कवि की मानसिक दशा क्या होगी, तो हमें अवश्य आनन्द मिलेगा।

भारत के पुरातन कवियों की भांति, तुलसी-दास जी के जीवन के विषय में भी निश्चयरूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। उनकी पुस्तकों के अन्दर जो कुछ झलक मालूम पड़ती है, उसी के आधार पर कुछ कहा जा सकता है। उसके आधार पर कहने में भी एक मत नहीं है। "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना।" सभी अपनी ही खोज को प्रामाणिक मानते हैं। परन्तु अगर हम इस पचड़े में न पड़ें और थोड़ी परिचिति प्राप्त करते जाएं तो बेहतर होगा।

तुलसी जी के नाम से ३८ ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। नाम देकर यूं ही स्थान भरने से लाभ नहीं कुछ के नाम बीच में आ ही जायेंगे। उनमें से १३ तो उनकी कृतियां मानी जाती हैं, शेष पर विवाद है। विवाद को छोड़ कर हमें आगे चलना चाहिये।

तुलसीदास भी एक नहीं। कुछ विशेषज्ञों ने उनके नाम के कई रामभक्त कवियों का उल्लेख किया है।

एक तो गीतावली, कवितावली, रामचरितमानस और विनयपत्रिका के रचयिता थे। दूसरे देवीपाटन के पण्डित तुलसीराम मिश्र (पेयासी) थे, जिनकी स्त्री का नाम रत्नावली, जिसके वचनों के कारण वे घर से चले गए थे और, विरक्त होने पर तुलसीदास हुए। रामायण में क्षेपक भी इन्होंने ही उसका कर नई प्रति तैयार कराई थी। तीसरे तुलसीदास ने छप्पै रामायण, कुण्डलिया रामायण, छन्दावलि रामायण, और बरवै रामायण की रचना की थी। इस प्रकार ८।९ तुलसीदास माने जाते हैं। दन्तकथाओं

के आधार पर कहा जाता ~~सकता~~ है, कि शोध सभी तुलसीदास अपने को ~~मस्तक~~ मानस कार का अवतार मानते थे। पर जो तुलसीदास बचपन में सोरों में रहे, उन्हीं की जीवनी पर ही यहां प्रकाश डालना है।

मानस का ~~समय~~ प्रारम्भ १६३१ से समय होता है। जैसा कि उन्होंने लिखा है-

"संवत् सोरह सौ इकतीसा ।
करौं कथा हरिपद धरि सीसा"

"नौमी भौम वार मधुमासा ।
अवधपुरी यह चरित प्रकासा ।"

इसी प्रकार तुलसी "सतसई" में उसका रचना काल यह लिखा है —

"अहिरसना[2] थन-धेनु[4] रस[6], गनपति-द्विज[1] गुरुवार"

इससे इसका रचना काल १६४२ मालूम पड़ता है।

कवितावली में मीन सनीचर और रुद्रबीसी का जिक्र आता है -

'<u>बासी बिस्वनाथ</u> की विषाद बड़ो वारानसी
बूझिये न ऐसी गति संकर सहर की।"

एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल ता में,

कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की"

गणना से रुद्रबीसी का समय सं. १६६५ से १६८५ तक और मीन शनैश्चर का १६६९ से १६७१ तक है। अतः उपर्युक्त प्रमाणों से मालूम हुआ कि वे १६३१ से सं. १६८५ तक अवश्य थे।

विनय पत्रिका में वे लिखते हैं —

"दियो सुकुल जन्म शरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।" "सुकुल" शब्द से चाहे 'उत्तम कुल' अर्थ लिया जाय अथवा "शुक्ल ब्राह्मण" अर्थ लिया, तो भी उनका वंश ब्राह्मण ही सिद्ध होगा।

कवितावली में लिखते हैं —

"भलि भारत भूमि, भले कुल जन्म

समाज सरीर भलो लहि कै।"

इससे उनका कुल उच्च ही जान पड़ता है। उनके जन्म लेते ही उनकी माता का देहान्त हो गया था। विनय पत्रिका में वे लिखते हैं-

"तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिताहूं।"

सोरों के पास "कुटीला" नाम का एक कीड़ा होता है, जो माता का पेट फाड़ कर निकलता है। इसी लिये उन्होंने अपनी तुलना उस कीट से की है। इससे यह भी मालूम पड़ता है कि पिता का देहान्त भी उसके कुछ दिन होगया होगा।

बचपन में कन्थावस्त्र पहने हुए, हाथ में मिट्टी का पात्र लिये हुए वे घर २ टुकड़े मांगा करते थे। —

'पातक पीन, कुदारिद दीन,
मलीन धरे कथरी करवा है।
लोग कहै, बिधिहू न लिख्यो
सपनेहू नहिं अपने बरवा है।"

(कवितावली)

कुत्ते के सामने पड़े हुए टुकड़े के लिये भी वे ललचाया करते थे। —

मातु-पिता जग जाय तज्यो
बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।

नीच निरादर भाजन कादर
कूकर टूकन लागि ललाइ ।
(कवितावली)

उनका जन्म उनके माता पिता का प्रा॰ नाशक बना और बचपन में उनकी क्या दशा थी, उसको निम्न पद भली प्रकार सजीव चित्रित होता है -

" जायो कुल मंगन बधावनो बजायो,
सुनि भयो परिताप पाप जननी जनक को ।
बारें ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को ।
(कवितावली)

चार दानों को ही चारों फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) समझते थे ।

पेट की आग बुझाने के लिये उन्होंने जाति, सुजाति और कुजाति सभी के टुकड़े खाये -

" जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस,
खाये टूक सबके विदित बात दुनी सो ।"
(कवितावली)

मट्ठे के लिए भी लालायित थे -
" छाछी को ललात — "
कवितावली

उनके दुःख से दुःख स्वयं दुःखित हो गया था —

"जननी जनक तज्यो जनमि,
करम बिनु बिधिहुँ सृज्यो अवडेरे।
फिरेउँ ललात बिनु नाम उदर लगि
दुखिउ दुखित मोहि हेरे।"
(विनयपत्रिका)

बालकपन में उन्हें खेलने का अवसर भी न मिला। इसीप्रकार वे द्वार २ फिरे, दांत निकाल कर, पैरों पड़कर उन्होंने अपनी दीनता कही, पर किसी ने उनकी बात भी नहीं ली। उनसे लोग इतनी घृणा करते थे कि उनकी छाया को छूने में भी उन्हें झिझक होती थी, हाय २ करके, दरवाजे-दरवाजे पर उन्होंने चिल्ला कर अपनी दशा सुनाई। वे मुंह खोले पड़े रहे पर उसमें धूलि भी न पड़ी। भोजन-वसन-विहीन वे कहां २ नहीं घूमे और किस पापी से पापी के आगे उन्होंने विवश होकर हाथ नहीं पसारे? लोभ ने उन्हें कौन नाच नहीं नचाया?

इनकी ऐसी दशा कब तक रही, कह नहीं सकते। इस दरिद्रता से लड़ते हुए अचानक एक दिन ये किसी सन्त के हाथ पड़ गए।

इनका पहला नाम "राम बोला" था। माता पिता तो मर चुके थे। नाम रखने वाला था ही कौन? राम २ चिल्लाकर भीख मांगते थे, लोगों ने इसीलिये इनका नाम यह रख दिया होगा। इसी लिये वे कहते हैं -

"राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम" (विनयपत्रिका)

"रामबोला नाम हौं गुलाम राम साहिब को।" (कवितावली)

सम्भवतः "तुलसीदास" यह नाम उनके गुरु ने ही रखा होगा।

तुलसी जी के गुरु का नाम 'नरहरि' था। "रामचरित मानस" के प्रारम्भ में गुरु वंदना करते समय लिखते हैं -

"बन्दौ गुरु पदकंज, कृपासिंधु नररूप हरि।"

यहां 'हरि' और 'हर' में पाठभेद भी माना जाता है। परन्तु हम उस पचड़े को अलग छोड़ कर उनके गुरु का नाम यही स्वीकार कर लेते हैं।

गुरु जी ने जब इन्हें बुला कर पूछा कि तुम क्या चाहते हो, तो इन्होंने उनका दास होना ही स्वीकार किया। गुरु ने इन्हें राम का भजन करने का आदेश दिया।

" मींजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि ——

X X X

गुरु कह्यो राम भजन नीको

मोहिं लगत राज डगरो सो।"

(विनयपत्रिका)

उनका अध्ययन बहुत था। रामचरित मानस के प्रारम्भ में उन्होंने ठीक लिखा है ——

नानापुराणनिगमागमसम्मतं

यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।।

उन्होंने राम की कथा गुरु के मुख से ही पहले पहल सुनी थी, और उस समय वे शिशु होने के कारण कुछ समझ भी न सके थे -

मैं पुनि निज गुरु सन सुनि, कथा सो सूकर खेत।

समुझि नहीं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत।।

(रामचरित मानस)

गुरु राम कथा कहते रहते थे। ज्यों २ उनकी उमर बढ़ती गई, त्यों २ वे अधिक समझने लगे। जितना उन्होंने लिखा है, कम से कम उतना तो समझा ही होगा। इसको भी वे कुछ बढ़ कर लिखते हैं —

तदपि कही गुरु बारहिं बारा।
समुझि परी कछु मति अनुसारा।"

'मानस' को उन्होंने अपने ही सन्तोष के लिये लिखा है। ~~इसको~~ वे लिखते हैं —

स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।

यह पद इसलिये भी लिखा हो कि ~~कैसे~~ उन्होंने अपनी परीक्षा ली हो कि देखें उन्हें कितनी समझ में राम कथा आई है। अथवा कुछ लोगों ने इसे पसंद न किया हो, तो उनके लिये यह उत्तर हो।

विवाह भी उनका हुआ ही होगा। कवितावली में वे संकेत करते हैं —

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो
राम नाम लेत मांगि खात टूकटाक हौं।

परयो लोकरीति में पुनीत रीति रामराय,

मोहबस बैठो तोरि तरकि तराक हौं।"

मोहवश में पड़ने और मोहवश रामराय की पुनीत प्रीति को तोड़ बैठने को विवाह के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

गार्हस्थ्य जीवन उनका किस प्रकार बीता इस विषय में कुछ कह नहीं सकते। धन के के लिये उन्होंने खेती की, व्यापार किया और अनेकों उपाय रचे-

"मध्य बयस धन हेतु गंवाई कृषी बनिज नाना उपाय।"

(विनयपत्रिका)

उनकी भाषा में किसानों, व्यापारियों के ठेठ बोलचाल के शब्दों का भी प्रयोग पाया जाता है। जैसे —

"जानि पुर जन त्रसे, धीर दै लखन हँसे

बल इनको पिनाक नीके <u>नापे जोखे</u> हैं।"

और — "कुंवर चढ़ाई भौंहें, अबको विलोकि सौंहें,

जहां तहं भे अचेत <u>खेत के से धोखे</u> हैं।

देखे नरनारि कहैं, <u>साग खाइ जाये माइ</u>,

बाहु पीन पांवरनि <u>पीना खाई पोखे</u> हैं।"

(गीतावली)

ये तो लोकोक्तियों के मुहावरे हैं। इसी प्रकार व्यापारी समाज के प्रचलित मुहावरों (जैसे के लेखा देई, सुलाखि और तमाम) और शब्दों का बहुत प्रयोग है।

इसके बाद वे वैरागी हुए। "कब हुए?" यह मालूम नहीं। और उन्हें गोसाईं की उपाधि मिली।

" तुलसी गोसाईं भयो, भौंडे दिन भूलि गयो "
(हनुमान बाहुक)

तुलसी जी एक ही जगह पर आसन जमा कर नहीं बैठे रहे। उन्होंने बहुत भ्रमण किया है। काशी वास की प्रशंसा में लिखते हैं - "---सो काशी सेइ कस ना।" तीर्थराज प्रयाग के प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी। चित्रकूट भी उनके प्रिय स्थानों में से था। " सब दिन चित्रकूट नीको लागत।" से तो यही मालूम पड़ता है कि उन्हें वह स्थान अत्यन्त प्रिय ही लगा होगा। शायद वे वहां रहे भी काफी समय हों।

उनके जीवन में ही उन्हें सम्मान मिलना आरम्भ हो गया था। दुःख का उन्होंने अनुभव भी किया है —

" घर घर मांगे टूक पुनि, भूपति पूजे पायँ।
ते तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय।।"
(दोहावली)

" सोवैं सुख तुलसी भरोसे एक राम के।"

" साधु जानें महासाधु।"

राजा भी उनके पैर पूजने लगा था। सम्मान मिलने से बहुत अभिमान था; संयोग से उन्हीं दिनों उनके शरीर में फोड़े निकल आए। तब उनको अपनी सम्मान-लोलुपता बड़ी ग्लानि हुई। —

अशन, बसन हीन, विषम विषादलीन
देखि दीन दूबरो करै न हाय हाय को?
तुलसी अनाथ सो सनाथ रघुनाथ किये
दियो फल सील सिन्धु आपने सुभाय को।
× × × ×
तातें तनु पेखियत घोर बरतोर मिस
फूटि फूटि निकसत लोन राम राय को।"
(कवितावली)

वे काशी में बहुत देर रहे और स्वर्गवास भी उनका वहीं हुआ। अयोध्या से काशी से अधिक अशान्ति होने से वे काशी में रहते थे। वे काशी में मरने के विचार से ही आनिमकर आए थे -

"जीबे की न लालसा दयालु महादेव मोहि
मालुम है तोहि मरिबेई को रहतु हौं।"
(कवितावली)

काशी में उन्हें सुख न मिला और दूसरा कारण उनका बढ़ता हुआ सम्मान था। पहले पहल शैवों ने तंग करना शुरू किया। उन्होंने शिवजी से प्रार्थना भी की-

"देवसरि सेवौं बामदेव गाऊँ रावरे ही -

x x x x x x

पाइके उराहनो उराहनो न दीजै मोहि

काल कला काशीनाथ कहे निबरत हौं।"

"तुलसी भी सुधरे, सुधरे रघुनाथ ही के

मेरे पाप आप गुरु संत मानिये।"

यहाँ अभी ने शिव का शिशु जाना है, वरा से मालूम पड़ता है
अपने विरोधियों-विशेषतः अपने आपको शैवों के मुकाबिले में असमर्थ पाते हुए उन्होंने उनकी कड़ी आलोचना भी की है —

"बीके बरा, घटके को बटा,

फल भूमि न वेद को भेद बिचारौं।

स्वारथ को परमारथ को, कलि कामद राम को नाम बिसारौं।

बाद बिवाद बिषाद बढ़ाइकै,

छाती पराई औ आपनी जारौं।

चारिहु को छहु को नव को दस

आठ को पाठ कुकाठ ज्यों फारौं॥"

" तिन्ह ते खर सूकर स्वान भले
जड़ता बस ते न कहैं कछु वै।
तुलसी जेहि राम सो नेह नहीं
सो सही पसु पूंछ विखान न द्वै।
जननी कत भार मुई दस मास
भई किन बांझ गई किन च्वै।
"

यह छन्द तो खूब विचार कर लिखा गया है। तीसरी पंक्ति में तो हद कर दी है। इससे, उनकी मानसिक दशा का पता चलता है।

आगे उन्होंने सन्तों को ताना भी मारा है और उनकी खिल्ली भी उड़ाई है —

" झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग
संत कहंत जे अन्त लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक
काढ़त दंत करंत हहा है।-"

इसमें "झूठो" तीन बार कह के कितने झुंझलाए हुए प्रतीत होते हैं।

रोगों ने उन्हें शारीरिक कष्ट भी दिया था! इसी प्रकार का उन का समग्र जीवन कितना संकटमय था!!!

जाति के विषय में बार २ पूछने पर उन्होंने कितनी झुंझलाहट से यह उत्तर दिया है —

" धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी से बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ।
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
मांगि कै खैबो मसीत में सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ॥"

दूसरी पंक्ति कितने आवेश को प्रगट करती है!

सब लोगों की उनके विषय में जो सम्मति थी, वह यह है —

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।
साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महा खल,
बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब है।
चहत न काहू सों न कहत काहू की कछु
सबकी सहत उर अंतर न ऊब है।
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ जी के
राम की भगति भूमि, मेरी मति दूब है॥"

सब की सहते रहे और कर ही क्या सकते? मालूम नहीं कि उनके मन में ऊब न थी, जब वे लिख रहे हैं, 'खल जाने महा

काशी में राजप्रबन्ध बहुत शिथिल था। रात को चोरी, दिन में डाके। गोरखपंथी भी उन्हें कम तंग न करते थे। मन्दिरों और तीर्थों की दशा आजकल जैसी ही थी। यति धनवान् और गृहस्थ गरीब थे। मत्स्यन्याय था। मूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं। दण्ड ही न्याय था —

" साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल।"

वर्णाश्रम धर्म न था। अधर्म के भय से जनता में भगदड़ सी मच गई थी।

" बरन धरम गयो आश्रम निवास तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुवासना बिनास्यो ज्ञान
बचन बिराग बेस जगत हरो सो है।
गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,
निगम नियोग ते सो कलि ही छरो सो है — "

रंक की दशा तो इससे भी भयानक थी।—

किसबी किसान कुल बनिक भिखारी भाँट
चाकर चपल नट चोर चार चेटकी।
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।

तुलसी बुझाई एक राम घनश्याम ही तें
आगि बड़वागि तें बड़ी है, आगि पेट की।

किसी के पास कुछ भी काम न था —

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस
कहैं एक एकन सों कहां जाई? का करी?॥

दुष्ट लोग —

"- आप महापातकी हंसत हरी हरहू को
आपु हैं अभागी, भूरिभागी डहियत हैं।"

काशी की विकरालता देख के वे बहुत व्यथित हुए। उनका हृदय टूट २ कर बह गया। उन्होंने सभी देवताओं के पास कविता में अपीलें की, परन्तु उन पर किसी ने भी तो ध्यान नहीं दिया।

सं. १६७३ में आगरे की ~~[illegible]~~ महामारी फैली थी, काशी में भी ~~[illegible]~~ फैली थी। उसके हटाने के लिये उन्होंने देवताओं से बड़े मार्मिक शब्दों में अपील की थी।

फिर शिव जी से अलग प्रार्थना की। उन्होंने भी ध्यान दिया। रामजी से विनती की और हनुमान जी को प्रोत्साहित किया, परन्तु किसी से भी बाहुपीर दूर न हुई। फिर एक एक करके अन्य देवताओं की प्रार्थना की। परन्तु जब किसी ने भी न सुनी तो अन्त में फिर राम की शरण ली —

"पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत,
रामहू की बिगरी, तुहीं सुधारी लई है।"

"बिरची बिरंचि की बसति बिस्वनाथ की जो
प्रानहू ते प्यारी पुरी केसव कृपाल की।
× × × × ×
हाहा करै तुलसी दयानिधान राम ऐसी
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की।"

जब प्रार्थनाओं का कुछ भी वांछित परिणाम न निकला, तब उन्होंने कहा —

आश्रम बरन कलि बिबस बिकल भए
निज 2 मरजाद मोटरी सी डार दी।
संकर सरोष महामारी ही ते जानियत
साहिब सरोष दुनी दिन दिन दारिदी।
नारि नर आरत पुकारत सुनै न कोऊ
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी।

अन्त में राम जी ने प्रार्थना सुनी और बीमारी चली गई।

जान पड़ता है कि महामारी के दिनों में तुलसीदास जी भी बीमार पड़े थे। उन्होंने वामदेव से प्रार्थना की.

"— अविहित वेदना विषम होत भूतनाथ
तुलसी विकल पाहि पचत कुपीर हौं।
मारिये तो अनायास कासीबास खास फल
ज्याइये तो कृपा करि निरुज सरीर हौं।"

वे कहते हैं कि मारते हो तो मार डालिये अगर जीवित रखना है, तो स्वस्थ शरीर दीजिए। इस बीमारी से उन्हें ~~और~~ अन्त में उन्हें रघुनाथ जी ने बचा लिया।

"खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि,
केसरी किसोर राखे बीर बरिआई है।"

दूसरी बार फिर बीमार पड़े। बाँह में पीड़ा उत्पन्न हुई थी। शायद ये वही भुजा थी, जिसको जिसे हनुमान जी ने पकड़ा था। उन्हें राम देवता कि बाँह चाहे न रहे, पर मुझे अवश्य बचा लीजिए। रोग का कारण मालूम न हुआ। उसे बात की खराबी, अपना कर्मदोष, अथवा पाप का प्रभाव मानते रहे।

"बात की खरालता करम कठिनाई की धौं
पाप के प्रभाव की सुभाय बाय बावरे।"

पीड़ा असह्य होती जा रही थी। किसी देवता ने भी उन पर दया नहीं की। ऐसे समय में उन्होंने स्वयं अपनी भक्ति की कि "पहले तो राम का नाम लेना आसान था। अब—

"घोर २ आपन आपत अपनायो,
अजिरी तुलसी सोंपो राम पति पाय हौं।
ताते फल पावत निदान परिपाक हौं।

शरीर में फोड़े भी इसी समय निकल आए। उन पर भी उन्होंने अपना गुस्सा प्रगट किया था। उन्होंने सीतापति, काशीनाथ, भूतनाथ आदि सब की प्रार्थना की, पर असर कुछ भी न हुआ। यह वह समय है जब भक्ति पर से विश्वास उठ जाता है। आजकल हम थोड़े से कष्ट में भी न रहने से परमात्मा की सत्ता को नहीं मानते। पर उन्होंने इतना बड़ा कदम नहीं उठाया। और दुखों की करतूत को समझ कर संतोष किया। ~~[illegible]~~ रघुनाथ जी से कहा— "भली भाँति दुसह पीर तें बिहाल होत
सोऊ रघुबीर बिनु सकै दूरि को करि।"

हनुमान जी से भी कहा ——
मेरो तेरो तुलसी "तू मेरो" कह्यो रघुनंदन,
ढील तेरी बीर मोहिं पीर तें पिराति है।

दुख चरम में कितनी व्याकुलता है। पिछली को हनुमान जी ने छुड़ा दिया था। पर दुख का उनके अन्त तक भी उनकी फरियाद पहुंचाने वाला पंछी अदृश्य था, या हनुमान ने उचित नहीं समझा उन्हें भी फिक्र थी तुलसी जी को अब + दुःख भी होना चाहिये। अन्त में उन्होंने यह लिखकर कि "जैसा बोया था, वैसा ही काटेंगे" कलम रख दी।—

कहौं हनुमान सों सुजान रामराय सों,
कृपानिधान संकर सों सावधान सुनिए।
हरष विषाद राग रोष गुन दोषमई
बिरची बिरंचि सब देखियत दुनिये।
माया जीव कालके करम के सुभाय के,
करैया राम बेद कहैं साँची मन गुनिये।
तुमतें कहा न होय, हाहा सो बुझैये मोहि
हौंहूं रहौं मौन ही, बयो सो जानि लुनिये।"

उन्होंने अन्त तक अपने इष्ट देवमें श्रद्धा रखी। हनुमान द्वारा सहायता न देने पर उन्हें क्रोध में ही आकर, डांटना, उपालम्भ शुरू नहीं कर दिया। अपने ही दोषों का फल माना। कितना धैर्य है!!!

वे अपने शरीर को मुर्दा भी कहते थे – और भारत-भूमि में जन्म लेने का उन्हें गर्व था।

"भलि भारत भूमि, भले कुल जन्म
समाज सरीर भलो लहि कै।"

※ ——

तुलसी जी के ग्रन्थों के आधार पर जितनी जीवनी निकल सकती थी, वह इतनी है। अन्य प्रमाणों आदि की खोज की गई है उनके समकालीन और बाद के लेखकों की पुस्तकों में भी उनके चरित का संग्रह किया गया है। इस विषय में कई पुस्तकें उपलब्ध हैं। इन पुस्तकों के आधार पर बहुत ही अच्छी खोज की गई है। बहुत सी दन्तकथाएं भी उनके विषय में प्रचलित हैं। मनोरंजकता के लिए

※ — उनका सम्बन्ध भी अच्छा ही था। जहां उन्होंने अन्य रस की कृतियां की हैं, वहां राम रस की भी उन्होंने की है। वे बिल्कुल इससे हीन नहीं थे - विनय के कवितों की इतनी हुई हैं, जब वे राम का हो गए हैं - उस विषय में तो सब को मालूम ही है।

उनका व्यक्तित्व भी रामायण से पहले ही बन चुका था। रामायण में उन्होंने लिखा है - आरम्भ में ही -

"जो जगिरत भये मानते, तुलसी तुलसीदास।"

मानो वे तुलसी से पहले ही हो चुके थे।

उनका देहावसान के लिए निम्न दोहा प्रामाणिक है। –

"संवत सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर।।"

उनमें एक दो यहां पर दी जाती हैं। इनके जीवन पर यह भी पता चलता है कि लोग उन्हें चमत्कारी भी समझते थे। इसी कारण एक बार दिल्ली के राजा ने उन्हें कैद कर दिया ~~[illegible]~~ और कि उन्होंने कहा कि वे चमत्कार नहीं जानते। परन्तु राम की ~~[illegible]~~ कृपा से वे जेल से निकल गए। —

एक बार उनकी कुटिया को चुराने के लिये दो चोर आए। चोरों ने रात को दो सुन्दर पहरेदार देखे और वापिस चले गए। अगले दिन चोरों ने तुलसीदास जी से क्षमा मांगी तो तुलसी जी हैरान हो गए। उन्हें बताई गई तो वे अत्यन्त दुःखी हुए कि उनके कारण राम लक्ष्मण को कष्ट हुआ। अगले दिन वह कुटिया दान में रख दी गई और उन्होंने अपना सारा सामान दान कर दिया।

इसी दन्तकथा को ग्रियर्सन महोदय ने भी लिखकर यह बताया है कि ईश्वर के भक्त को खान-पान, रहन-सहन की कोई तकलीफ़ नहीं होती।

इसी प्रकार अन्य अनेक दन्तकथाएं ~~भी~~ प्रचलित

भ है। उनके आधार पर एक नया ही जीवन-चरित्र लिखा गया है। दन्तकथाएं तो यह बतलाया करती हैं, कि उनका आम जनता पर प्रभाव क्या था। उनका अन्य कोई मूल्य नहीं; प्रयोजन भी नहीं। अतः उनकी सत्यता का पूर्णतया: विश्लेषण नहीं किया जा सकता। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी एक दो दन्तकथाओं का अपनी भाषा में अनुवाद किया है। लेकिन अदालत देगी, तो उनका मामूली सा वजन है।

इतना तो कवि के व्यक्तित्व के बारे में लिखना था कि उससे परिचय करने की कोशिश की। लेकिन स्वाभाविक प्रवृत्ति तो ज्ञान करने का प्रयत्न किया गया है। कवि को कवि के रूप में देखने का अधिक अवकाश चाहिये। उनको तो जितना ही पढ़ा जाय उतना ही नया, सुन्दर जान पड़ता है। यही रमणीयता का भी लक्षण है कि "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।" काव्य को भी जितनी बार देखा जाय = पढ़ा जाय, उतना ही नया ही नया मालूम पड़ता जायगा।

राजहंस

इसने सब ग्रन्थों में रामायण को सबसे अधिक श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। और प्रत्येक हिन्दी-भाषाभाषी ने इसको एक बार तो अवश्य ही पढ़ा होता है। कई तो हिन्दी भाषा सीखना आरम्भ के लिये मानस को ही उठाते हैं। कई घरों में तो प्रतिदिन ही इसका पाठ होता है। आजकल अखबारों में पढ़ने जाते है कि अमुक २ स्थानों पर रामायण (मानस) का पाठ होगा। लाखों लोग भी वहां पर बहुसंख्या में पाये जाते हैं। आजकल तो निचली जातियों की आंख खुली है और वे इसको सुनने के लिये आते ही हैं। पहले भी उनमें लालसा अवश्य थी, परन्तु सुनने का अधिकार नहीं था।

इसकी लोकप्रियता का और प्रमाण यह है कि अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद और टीकाएं भी हुई हैं। जैसे- संस्कृत, उर्दू, बंगला, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी आदि। वास्तव में यह ग्रन्थ इस लायक भी है कि इसके इतने अनुवाद हों। हिन्दी में तो कई भिन्न २ विद्वानों ने १५ टिकाएं की हैं।

इनके ग्रन्थों को पढ़ने से पता चलता है कि उनका अध्ययन बहुत था। उनके काव्यों का मिलान कई पुस्तकों से कर सकते हैं। और अनुवाद होने में भी इन्होंने अच्छा ही अनुवाद किया है। अश्लीलता जो कि संस्कृत में एक दो जगह आई है, वह इनके अनुवाद में नहीं। जैसे कि

भागवत में - "शिश्नोदर परा द्विजाः"

मानस में — "विप्र निरच्छर लोलुप कामी।"

अनुवाद सौन्दर्य का भी एक उदाहरण दे रहा है —

भागवत - पाण्डित्ये चापलं वचः.

मानस - पंडित सोई जो गाल बजावा.

भागवत — "लावण्ये केशधारणम्।"

मानस — "अबला कच भूषन भूरि छुधा।"

सुभाषितभाण्डागार — सज्जनस्य हृदयं नवनीतं
यद्वदन्ति कवयस्तदलीकम्।

मानस — संत हृदय नवनीत समाना
कहा कविन्ह पर कहै न जाना।"

किन्तु [illegible] अनुवाद है। अनुवाद में शिथिलता नहीं - चाहे [illegible] में हो। इसलिए प्रत्येक संस्कृत के ग्रन्थों का अनुवाद पाया जाता है।

पढ़कर यह भी आश्चर्य होता है कि एक पद एक पुराण का है- दूसरा दूसरे का, तीसरा अन्य का चौथा न जाने कहाँ का। यह है विद्वत्ता। भावना सभी के एक से होते हैं। पर उन्हें चोला पहनाने की बात अलग २ होता है और यही कवि की विशेषता है, जो इन उनमें सर्वथा पाते हैं। इसी से उनके ग्रन्थ अनमोल की भी जान पाते हैं। —

अब आगे में उनके ग्रन्थों की रचनाओं का काल क्रम दे दिया जाता है —

ग्रन्थ	रचनाकाल	आयु
वैराग्य संदीपनी	१६१४ के लगभग	२६ वर्ष
कवितावली	१६१० से १६६१	२१-७२ "
दोहावली	१६१० से १६६१	२१-७२ "
तुलसी-सतसई	१६१० से १६४२	२१-५३ "
बरवै रामायण	१६१० से १६४०	२१-५१ "
रामलला-नहछू	१६१५ के लगभग	२६ — "
गीतावली	१६१५ से १६२०	२६-३१ "
रामाज्ञा-प्रश्न	१६२० के लगभग	३१- "
जानकी मंगल	१६२४ के लगभग	३५— "
अयोध्या काण्ड	१६२५ से १६२८	३६—३९ "
श्रीकृष्ण-गीतावली	१६२८ से १६३०	३९-४१ "
रामचरित-मानस	१६३१ से १६३६	४२-४८ "
पार्वती मंगल	१६४३ —	५४ — "
विनय पत्रिका	१६४५ से १६६८	५६- ७९ "

("तुलसी दास और उनकी कविता" [illegible] से)

दीप निर्वाण

आनन्द दया दोनो के
सम्यक् तुम सम्मिश्रण थे।
या हर्ष विषाद उभय के
तुम चारु चरम चित्रण थे॥

जो भूल भटक कर भ्रम से
पथ विचलित होजाते थे।
तुम दया दान दे उनको,
सच्चे पथ पर लाते थे॥

नवनाल भानुकर सम थे,
मंजुल मृदु मोद मनाते।
आनन्द सुधा बरसाते,
हिय को हरदम हरषाते॥

तम तीम तमिसा का था,
निज कर से दूर नसाया।
अज्ञान अंधेरी रजनी
में निज प्रकाश विकसाया॥

श्रुति स्नेह सरस पीते थे
धरते थे तूल[१] विमल को।
तुम पुण्य प्रकाश प्रकाशित,
करते थे धरणीतल को॥

विध्वस्त अघों का करने
अवतस। शलभ आते थे।
तन दुर्गुण दुष्ट नशाकर,
पद उत्तम पा जाते थे॥

---
१ कपास

राजहंस

नर नीच नगण्य नृशंसों
की आंधी हालाहल सी।
चल पड़ी दिशाओं में तब
चंचल वह चलित अचल सी॥

कर गया तुम्हें निर्वापित
झट झंझानिल का झोंका।
सच भाग्य लिखे को भूपर
अबतक किसने है रोका॥

महादेव गोविन्द रानाडे

हम हिन्दुओं का यह पूर्ण धार्मिक विश्वास है कि संसार में जब भी कभी ऐसा प्रतीत होने लगा कि पाप की पुण्य पर, अधर्म की धर्म पर और अन्याय की न्याय पर विजय हो रही है उस समय ज्योतिरूप परमात्मा की एक किरण भूलोक पर अवतरित होकर मानव समाज की रक्षा करती है। यह नियम यदि मनुष्य का अपना विचार होता तब शायद ही नहीं, निश्चय से- इतने दिनों से चल कर आता हुआ अब तक हमारा धार्मिक विश्वास बन कर न रह सकता। हम इस विवाद में नहीं पड़ते कि यह कृपा मनुष्य ने या मनुष्य से भिन्न कुछ और। इतना तो अवश्य ही माना जा सकता है कि कानून का बनाने वाला भी उस का शिकार हो सकता है। और फिर यह नियम तो भगवान के विषय में है, पर भला मनुष्य बनाए? फिर ईश्वर की सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता तथा दुर्विग्रह का अभिप्राय तो यह हुआ कि ईश्वर भी किसी अन्य के नियमों को पालने के लिए

पराधीन हैं तो फिर हम मनुष्यों में और भगवान में क्या अन्तर रहा? हम तो कर्म फल करने स्वतन्त्र हैं और कर्म फल में परतन्त्र परन्तु ईश्वर कर्म फल देने में तो स्वतन्त्र था अब कर्म करने में भी परतन्त्र हो हुआ इस प्रकार तो हम ईश्वर की सत्ता का ही लोप कर देंगे। अतः श्री कृष्ण भगवान न थे ऐसा समझ में नहीं आता। साथ ही साथ हमारे हृदय की गहरी चेतनता इस कदम कदम पर सकारात्मक वाणी पर इस सिद्धान्त का प्रचार चिर काल से करती हुई आ रही है। मनुष्य के जीवन में एक न एक क्षण अवश्य ही ऐसा आता है जब भी वह इस बात को स्वीकार करता है पर अन्तरतम की बात जो सदा सत्य का ही सामान्य है ईश्वर की वाणी नहीं होगी तो किसकी होगी? ईश्वर की इस शक्ति के विषय में जिसको हम मनुष्य रूप में आभास प्राप्त करते हैं इस गहराई तक जाने का प्रयत्न नहीं करते कि उसे अवतार शब्द से प्रकट किया जाये या महापुरुष इस शब्द से? यह तो अपनी २ भावनाओं पर अवलम्बित है। इस बात का जो जितने विशाल रूप में देखेगा वह उतना ही अधिक भावुकता पूर्ण नाम देगा। इसके बाद यह मनुष्य का अपना स्वभाव है कि वह अपने सिद्धान्तों की किस रूप में रक्षा करता है। यदि कोई अशुद्ध रूप में नहीं लेता तो अवतार शब्द से अच्छा कोई अन्य शब्द मिलना कठिन है। परन्तु यह निश्चित

होने पर कि १०० में से ९९ मनुष्य भ्रम में पड़ जाते हैं, तब तो बुद्धिमत्ता के विचार से महापुरुष शब्द अनुपयुक्त है ऐसा नहीं कहा जा सकता है।

महापुरुषों से अधिक हमारा यह दुर्भाग्य है कि हम उस समय के लोग उन्हें समझ नहीं सकते और बाद में आने वाले मनुष्यों के लिए उन तक पहुँचना असम्भव होता है। यही कारण है कि वे महापुरुष अनन्तकाल तक ध्रुव तारे के समान स्थिर रह कर अपने पीछे आने वालों के लिए एक निश्चित दिशा का निर्देश करते रहते हैं जहाँ तक पहुँचना ही सब का उद्देश्य होता है। सम्भव है कि धीरे धीरे इनका स्थान उन महापुरुषों को मिल जाय जिन्होंने भी उस समय के समाज की आवश्यकताओं को अनुभव कर उन्हें पूर्ण करने का प्रयत्न किया है, और उस लक्ष्य तक पहुँचे हैं जहाँ तक जाना वह समाज मानव की सर्वोत्कृष्ट एवं अन्तिम सीमा समझता है। हम कह नहीं सकते कि पहले महापुरुष जिनको हम महापुरुषों की श्रेणी में रखते हैं यदि वर्तमान समाज में जन्म लेते तो उनका कौनसा स्थान होता? इससे हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं कि समाज ही महापुरुषों का बनाती है अथवा केवल महापुरुष ही समाज का निर्माण करते हैं, किन्तु वे दोनों एक दूसरे की आवश्यकताओं को अनुभव करते हुए उन्हें पूरा करने का प्रयत्न हुए अनन्त काल से एक दूसरे को

बनाते चले आ रहे हैं। यदि कोई समाज को छोड़ कर स्वतन्त्र महापुरुष बनना चाहे तो वह कभी भी सफल नहीं हो सकता, सफल होने के लिए उसे समाज का आश्रय लेना पड़ेगा। इसी प्रकार यदि कोई समाज जो आगे बढ़ना चाहती है तो उसके लिए अपने आदर्श के अनुसार एक नेता पुरुषों की आवश्यक है। इन दोनो मे किस पुरुष पर जिसका प्रभाव कम या अधिक पड़ता है वह समाज भी उस समय की उन्नत या अवनत दशा से ही जाना जा सकता है।

इन महापुरुषों की नामावलि मे हमे महादेव गोविन्द रानाडे का नाम एक उज्वल नक्षत्र के समान दिखाई पड़ता है। परतन्त्र भारत को रानडे के समान तेजस्वी पुरुष की आवश्यकता थी जो कि अपने वैयक्तिक जीवन से ही एक अच्छा आदर्श दिखा सकता हो। व्याख्यान या उपदेश की अपेक्षा मनुष्य का जीवन अधिक प्रभावोत्पादक होता है। इसको रानडे भलिभांति समझते थे और वे इसे अपने जीवन का सूत्र बना कर चले, यही उनके सफलता की कुंजी बना।

व्यक्तिगत जीवन से यह अभिप्राय नहीं है कि वे रात दिन २४ घन्टे जप तप के नियमों का ही पालन करते रहते थे। वस्तुतः सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की व्याख्या करना कोई सरल

काम नहीं है, क्यों कि व्यक्ति का अपना काम भी अन्ततोगत्वा समाज के ही लिए होता है, समाज का भव्य प्रासाद व्यक्तियों द्वारा ही निर्मित होता है, इन व्यक्तियों का कार्य भी समाज से सम्बन्ध रखता है, और जिसे हम सामाजिक जीवन का कार्य कहते हैं वह भी समाज का एक अंग व्यक्ति हो कर किया जाता है, अतः यह व्यक्तिगत हुआ, इस प्रकार दोनो ही शब्द दोनों ही अर्थों के बोधक हैं। हम सामान्यतया सत्य उसे ही मानते हैं जो व्यवहार में प्रयुक्त होता है।

यद्यपि रानाडे ने अपने गार्हस्थ्य जीवन के अतिरिक्त सभा समितियों में तथा अन्य सामाजिक कार्यों में बड़े मनोनियोग पूर्वक हिस्सा बंटाया था। परन्तु कई लोगों का ऐसा विचार है कि रानाडे के सारे जीवन को देखते हुए हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उनके व्यक्तिगत जीवन की अवधि सामाजिक जीवन से अधिक है। यद्यपि उनका सामाजिक और व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार का जीवन श्रेष्ठ था। हमें यह इसलिए प्रतीत होता है क्यों कि रानाडे ने किसी एक दिशा को कार्यक्षेत्र बना कर कार्य नहीं किया किन्तु राजनीति शिक्षा, धर्म, समाज-सुधार, औद्योगिक उन्नति इत्यादि सब दिशाओं में निरन्तर प्रयत्न से कार्य किया था। यह हमें इसलिए भी लग सकता है कि रानाडे अपनी जीविका के लिए अन्त तक अपना स्वतंत्र

कार्य भी करते रहे थे। इसलिए यह सोचकर कि इन्होंने समाज को अपनी पूर्ण आहुति नहीं दी है उन्हें समाज से निकाल देना उनके प्रति अन्याय करना होगा। रानाडे के विषय में तिलक ने एक बार कहा था कि रानाडे स्वदेश के लिए जो काम कर गये हैं उतना काम अन्य देशों में शायद बहुत से आदमियों ने मिल कर भी नहीं किया होगा। इसी प्रकार कांग्रेस के जन्मदाता मि ए ऽ ब्लू ह्यूम ने एक बार कहा था कि — "If there was one man in India who for the whole 24 hours in the day thought of his country, that man was Mr Ranade"

यदि भारतवर्ष में कोई ऐसा व्यक्ति था जो चौबीसों घन्टे स्वदेश का ही हित चिन्तन किया करता था वह रानाडे था। इन उद्धरणों से यह समझा जा सकता है कि रानाडे की प्रतिभा और उनके कार्य के विषय में देश के उस समय के नेताओं की क्या सम्मति थी।

रानाडे का जीवन बाल्यकाल से ही बड़ा प्रतिभा-सम्पन्न दिखाई देता है, विद्यालय और महाविद्यालय दोनो स्थानों की परीक्षाओं में सदा अच्छे अंक लेकर सर्व प्रथम आते थे। तथा उन्हें हमेशा छात्रवृत्तियाँ मिलती रहीं, रानाडे की बाल्य-काल की ये सब घटनाएं उनके भावी जीवन की भूमिका मात्र

थी। इन बातों को देखकर कोई भी यह भविष्यवाणी कर सकता था कि इनका भविष्य उज्ज्वल है। रानडे के सफल होने में एक यह भी कारण हो सकता है कि उन्होंने इन छोटी मोटी बातों पर कभी इस प्रकार हर्ष नहीं प्रकट किया कि यही हमारे अन्तिम लक्ष्य हों। परीक्षाओं में पास होकर भी इन्होंने घर कभी नहीं लिखा कि मैं उत्तीर्ण हो गया हूं। माता पिता को बड़ी चिन्ता रहती थी कि कहीं हमारा लड़का अनुत्तीर्ण न हो गया हो। छुट्टियों में घर आने पर जब इनसे पूछते कि तुमने उत्तीर्ण होने का समाचार क्यों नहीं लिखा?— तब ये यही कहते कि इसे लिखने की बात ही क्या है, जब परिश्रम किया था तब उत्तीर्ण तो होने ही।

विद्यार्थी जीवन से ही रानडे का स्वदेश प्रेम अपूर्व था। एक बार इनके अध्यापक ने अंग्रेज और मराठा राज्य की तुलना करने को कहा। रानडे ने तुलना करते हुए मराठा राज्य को उत्तम बतलाया जब कि इन्हें पढ़ाया यह गया था कि आंग्ल-राज्य अच्छा है। इसके लिए रानडे को दण्ड मिला और ६ महीने तक की छात्रवृत्ति छीन ली गई। यद्यपि यह घटना छोटी सी कही जा सकती है, परन्तु रानडे के आगामी जीवन की आंशिक अभिव्यक्ति मिल सकती है। प्रारम्भ से ही रानडे का ध्येय समाज सेवा था।

रानाडे जिस काम को लेते थे उसे पूरा करके ही छोड़ते थे। वे इस बात को अच्छी प्रकार समझते थे कि भारत की वर्तमान दशा ठीक नहीं है। देश की अधिक जन संख्या गावों में ही रहती है, और वहां सुधार करने से ही देश का कल्याण हो सकता है। रानाडे ने सर्व प्रथम पंचायत प्रथा का पुनरुद्धार किया। वे जानते थे कि बड़ी २ अदालतें केवल शहरों में ही हैं, जहां पर गरीब ग्रामीणों का समय तथा धन व्यर्थ में ही नष्ट होता है और इतना होने पर भी न्याय की कोई आशा नहीं होती है। अतः पंचायतों की प्रथा डालनी चाहिए जिससे इस दिशा में सुधार हो सके। इसी विषय में एक बार अंग्रेजों को ताना मारते हुए इन्होंने लिखा था कि भारतीय इतने योग्य इमानदार हैं कि वे न केवल अपनी पंचायतें ही चला सकते हैं- किन्तु शासन सूत्र भी सम्भाल सकते हैं। पंचायत प्रथा के लिए उन्होंने समाचार पत्रों द्वारा बड़ा आन्दोलन किया तथा प्रतिपक्षियों की विप्रतिपत्तियों का बड़े जोरदार शब्दों में मुंहतोड़ उत्तर दिया, और अन्त में इस कानून को बनवा कर ही विश्राम लिया।

सरकार ने जब कृषक ऋण निवारक कानून बनाया था, उस समय रानाडे ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अपनी योग्यता से किसान और जमींदार दोनों को ही सन्तुष्ट रक्खा।

रानाडे अपनी संस्कृति अपनी जाति तथा देश के अनन्य उपासक थे। विदेशी वस्तुओं से इन्हें स्वाभाविक घृणा थी। विदेशी वस्तुओं को व्यवहार में लाना वे मन की परतन्त्रता का चिन्ह समझते थे। एक बार वे अपने भाई से इसलिए नहीं मिले क्यों कि वह विदेशी पहिनावे में था। वे कहते थे कि जब विदेशी लोग भारत में आकर इतना कष्ट सहते हुए भी अपनी वेश भूषा नहीं छोड़ते तब हमको अपना वेश जो सुखदायी एवं उचित है क्यों बदलना चाहिए ?

देश की हलचलों में रानाडे केवल भाग ही नहीं लेते थे किन्तु उनको चलाने वालों में भी सदा आगे रहते थे। ये कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन पर जाते थे और उस में सक्रिय भाग लेते थे। अन्तिम समय जब बीमारी के कारण लाहौर कांग्रेस पर नहीं जा सके तब ये रो पड़े और इतना ही कह सके कि यह मेरा प्रथम अवसर है जब मैं कांग्रेस के अधिवेशन में नहीं जा रहा हूं। शायद उनका हृदय इस बात को जानता था कि यह अवसर केवल प्रथम ही नहीं किन्तु अन्तिम भी है। लाहौर की कांग्रेस पर इनके लिखित भाषण को गोखले ने पढ़ा था।

रानाडे यद्यपि सुधार के और परिवर्तन के पक्षपाती थे किन्तु वे समाज की क्रान्ति-उच्छृंखलता और-

मत मतों के पक्षपाती न थे। वे समझते थे कि हमारे देश की - पुरानी प्रथाएं बुरी नहीं हैं - किन्तु उनके सत्य स्वरूप को प्रकट करने की आवश्यकता है।

मनुष्य संसार की कठिन परिस्थितियों में रहता हुआ किस प्रकार सच्चा प्रेमी हो सकता है— इसके लिए रानाडे का जीवन आदर्श रूप है।

रानाडे के जीवन का समाज पर जो प्रभाव पड़ा उसके लिए संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि वे उनमें से गोखले जैसा व्यक्ति उत्पन्न कर सके।

परतन्त्र भारत की कुछ श्रेष्ठ विभूतियों में महादेव गोविन्द रानाडे का नाम चिरस्मरणीय रहेगा। रानाडे का - जीवन बाल्यावस्था से लेकर मृत्यु पर्यन्त का जीवन आदर्श जीवन है। वर्तमान काल में बहुत कम ऐसे लोग हैं हैं जो इस महान व्यक्ति के विषय में कुछ जानते हैं। भविष्य में आने वालों के लिए रानाडे बहुत दूर की वस्तु हो जायेंगे - यह हमारे दौर्भाग्य की बात है।

एक क्रान्तिकारी कहानी –

आदर्श

– श्री अर्जुनदेव
(एकादश)

नी की कहानी मे बच्चो को जो मजा मिलता है – हमे उससे बढ़कर अपने भाई जी की बातो मे मिलता था। अध्यापको की झिड़कियो, गणित की कठिन पहेलियो, और व्याकरण की दिमाग चाटने वाली कठिनाइयो को हल करने के बाद घर आते ही जब रोज नई बाते सुनने को मिलती, नई कहानियो को जिनको कि हम सत्य समझते थे और जिनका प्रारम्भ राजा और रानी के प्रसंग से होता था– सुन कर हम भूल जाते थे कि दुनिया मे "कानी"

मानव कोई भीख भी है। आते ही हम भाई जी को घेर लेते और पहला ही वाक्य निकलता - "भाई जी कहानी, आज है सुनानी !" और वह शुरु करते हुए अपना पहला वाक्य पूरा करते - "फलां देश में फलां नाम का राजा रहता था।

आज हमारे गणिताध्यापक - जो कि दुर्बल तथा दुर्बलमिजाज होने के लिए सारे स्कूल में मशहूर थे - लगता था कि घर से लड़ कर आए थे - क्यों कि उन्होंने class-room में प्रवेश करते ही श्रेणी को झुकाने का एक प्रश्न लिख दिया जो कि हमने अपने पूर्व कभी भी न देखा था और उस के हल न कर सकने के कारण मेरे सहित सभी विद्यार्थी को पांच २ बेंत लगाये थे। इस घटना से मेरा दिल बहुत दुःखी था। मैं सोचता था कि गणित के कठिन सवालों को हल करने के कारण गणिताध्यापक का हृदय भी कठिन - कठोर पत्थर की भांति हो गया था। सारी श्रेणी उदास थी - और मैं - मुझे तो ऐसा लग रहा था कि जैसे मैं पागल हो जाऊंगा क्यों कि मेरे जीवन के यह पहला ही मौका था - इच्छा होती थी कि किसी प्रकार उस

कर भाई जी के पास पहुँच जाऊँ - क्योंकि वही मेरी व्यथा अनुभव कर सकते थे - वही सहानुभूति प्रकट कर सकते थे और सच्ची सहानुभूति तो संवेदना का रूपान्तर है। - पर भावविचारों में लगा हुआ मैं घर पहुँचा - वहाँ पहुँचते ही मैं समझ गया कि आज कोई रोशनदान भी नहीं थी।

घर खाली था - भाई जी कहीं बाहर गये हुए थे - मैं घर में चक्कर लगाने लगा। मैंने देखा कि घर के एक कोने में एक फोटो लगी हुई थी - जिस में एक वृद्धपुरुष नौजवान लेटा हुआ था और मेरे भाई जी उसके सिरहाने उसके सिर पर हाथ रखे हुए खड़े थे। उनके चेहरे पर मुर्दनगी छाई हुई थी। ऐसा मालूम होता था कि मानो आँसू अभी फूटना ही चाहते हों। उस फोटो के नीचे स्वर्णाक्षरों में लिखा था - "लाहौर का मशहूर डाकू"। मैंने इससे पहिले भी कई बार इस फोटो को देखा था, पर कोई विचार मेरे दिमाग में न आया था। आज उस फोटो के चारों ओर फूलों की माला बनाकर टंगी देख मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। लाहौर के मशहूर डाकू से भाई जी का क्या सम्बन्ध? मेरे दिमाग ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। मैं नहीं कह सकता कि

कि मैं कितनी देर तक उस कोठे की ओर स्थिर दृष्टि से देखता रहा - हाँ, मुझे याद है कि मेरी नींद उस समय खुली जबकि मेरे सिर पर किसी के शीतल हाथ का स्पर्श हुआ। मैंने आश्चर्यचकित होकर जो पीछे सिर घुमा के देखा कि भाई जी खड़े मुस्करा रहे थे। उस विलक्षण की दशा में मैं मूक सा, अवाक् सा खड़ा रहा। कुछ दशाओं में हमारे चेहरे के हावभाव, आँखों की भाव-भंगिमायें और दिल की भावनाओं को स्वयं स्पष्ट कर देती हैं। मुझे इस हालत में देख कर वे बोले - "वीरेन! मैं समझ गया कि तुम क्या पूछना चाहते हो।" मैंने सिर हिला के स्वीकार की कि ठीक है, भाई जी मेरे मनोभाव को समझ गए हैं, इसलिए मैं उत्सुकतापूर्वक बोला - "मैं और कुछ न पूछूँगा, मुझे बतलाइये कि यह कौन व्यक्ति है?" मैंने देखा कि भाई जी की आँखें चमक उठीं, फिर नीचे को झुक गईं और उन्होंने साथ ही वे लड़खड़ाती आवाज में बोले - "तुम सुनना ही चाहते हो तो सुनो।" और मैं एकाग्रतापूर्वक सुनने का प्रयत्न करने लगा।

(२).

आज से बहुत वर्ष पहिले प्रातःकाल का समय था। फरवरी के अन्त के दिन थे और हमारे B.A. के इम्तिहान शुरू हुए थे - गणित के कठिन साध्यों को हल करने के कारण मेरा दिमाग थका हुआ था, रातभर नींद न आई थी। कपड़ों का प्रयोग न होने के लिए बाधित करता था। करवट २ करके मैं रात गुज़रने की प्रतीक्षा कर रहा था। उठते २ सोचने के बाद जब मैंने करवट बदली तो चार के घंटे बजते थे। खिड़की से झांक कर देखा - बाहिर सम्पूर्ण प्रकृति शीत, निस्तब्ध और शुष्क थी - घना कोहरा छाया हुआ था। लाहौर की विशालनगरी जहां दिन में अनेक भीषण कोलाहल से दसों दिशाओं के कानों को फाड़ने का विफल प्रयत्न करती थी - इस समय श्मशान की सी शान्ति विश्राम कर रही थी। ऐसा लगता था कि उस दिन सवेरे-दिन और अनारकली बाज़ार के बीच में लाजपतराय मैंने विशाल S.C. की विशाल दुकान के सामने जो रेड-क्रॉस की, जिसके दोनों बाहुओं पर + का चिह्न था, तथा जिसकी जेब में से + चिह्न के लाल कागज़ पाये

गए थे - उनकी लाश पाई गई थी - उस घटना से सम्पूर्ण
लोगों पर एक आतंक सा छाया हुआ था। जब तक घर
कभी भी हो ही सड़कों पर आवागमन शुरू होजाता था
वहां आज चिड़िया का एक पूत भी नज़र न आता था.
मानो उस घटना ने वहां १४४ धारा लगा दी हो। एक न
मालूम कैसे मैं विलोपित उठा, कोट पहने औ हाथ
में छड़ी लेकर जगत के पार्क में घूमने को निकल दिया।
कुछ ही मिनटों में वहां पहुँच कर थोड़ा बहुत टहलकदमी
करके मैं एक बैंच पर बैठ गया। बैठे हुए थोड़ा समय
हुआ होगा कि एक आवाज आई - "बाबू जी! क्या आप
मेरी कुछ सहायता न करेंगे?" - मैंने देखा कि एक युवा
आदमी, जो देखने में बड़ाबड़ा लगता था, पर जिसके
शरीर पर चिथड़े लिपटे हुए थे - थोड़ी दूर पर खड़ा
गिड़गिड़ाकर अपील कर रहा था। मैंने घबड़ाकर
कहा कि कहो क्या बात है? तो वह बोला - उधर में
भी मेरी छुट्टी है, आप वहां चलें तो सब बात होगी।
मैं मंत्रमुग्ध सा उसके पीछे २ नीचे मुंह किये हुए,
विचारों में मग्न, चलता गया और तब मेरी नींद टूटी
जब मैंने अपने को एक श्मशान में, दो अट्टालिकाओं

राजहंस

जोकि मेरे हाथों को पकड़े हुए थे - गिरा हुआ पाया। मैंने
अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न करते हुए कहा, "तुम कौन
हो? मुझे कहां ले आए हो तथा तुम्हें मेरे से क्या काम
है? उन में से जो मुझे यहां तक ले आया था बोला-
आप व्यर्थ में छूटने का प्रयत्न न करें नहीं तो यहीं
"शूट" कर दिये जाओगे, आपसे हमें काम है- आप
को हमारे साथ चलना पड़ेगा। मैं लाचार था- दोनों ने
मिलकर मेरी आंखों पर पट्टी बांध दी औ इतने में
आई हुई एक कार पर बैठा कर चले। चार घण्टे टेढ़े-
मेढ़े रास्तों से होती हुई पौनघण्टे के बाद एक स्थान
पर रुकी - मेरी पट्टी खोल दी गई। मैंने आश्चर्य से
चारों ओर देखा, आबादी का नामोनिशान न था, घना
जंगल था और उसके बीच में [illegible] एक गुफा थी-
जहां हमारी कार खड़ी हुई थी। खैर- तीनों व्यक्तियों
ने मिलकर मुझे उतारा औ गुफा का [illegible] हटा
कर अन्दर की ओर चले। अन्दर का दृश्य मैं तो देखकर
हैरान रह गया। एक धनीराजा का दरबार भी फीका
लगता होगा। चारों ओर विचित्र प्रकाश था, सुगन्ध
भरी हुई रहस्यमी [illegible] - एकाएक एक झनझनाहट

और चमक थी - उजाला तो आँखें चकाचौंध हो
जाती थी और इन सब के बीच में एक ऊँचा [illegible]
सिंहासन पर [illegible] और [illegible] [illegible]
शुरू जाता था - [illegible] सरदार [illegible] पर आसीन था।
आए हुए लोगों ने उसे नमस्कार किया और उसके बीच
में [illegible] [illegible] और बैठ गए। सिंहासन पर
सरदार एक बार मुस्कराया और फिर बोला - "आइये
अतिथिवर! क्या हाल हैं? - मैं तो बैठा हुआ सोच
रहा था कि यह कौन [illegible] तथा ये लोग कौन हैं?
मैंने मुस्करा कर पर आश्चर्यचकित होकर उनसे
पूछा कि क्या मैं पूछ सकता हूँ कि मैं किन लोगों का
अतिथि हूँ और यहाँ किसलिए लाया गया हूँ? इसके
साथ ही एक [illegible] [illegible] हुआ और सरदार ने कहा -
"जलपान के बाद आपको सब ही मालूम हो जाएगा"
थोड़ी देर में जलपान के लिए चाय, केक आदि
लाये गए। चाय तो बहुत ही [illegible] था - जलपान के
बाद दूसरी बैठक शुरू हुई, एक [illegible] गाया गया
और फिर उसने [illegible] [illegible] मुझे घेर लिया - [illegible]
ही उसी मसनद पर आसीन सरदार ने [illegible] गम्भीर -
पर [illegible] [illegible] के साथ कहा - "हे [illegible]!

हम तुम्हारे कार्यों से, तुम्हारे उत्साह और साहस से प्रसन्न हैं और तुम्हें अपने दल में शामिल करना चाहते हैं। हमारा उद्देश्य नेक है - हमें अपने देश की सेवा करनी है।" इतनी देर बाद मुझे ज्ञात हुआ कि यह सारा षड्यन्त्र था - मैंने विनम्रतापूर्वक प्रार्थना की कि मैं कमजोर दिल का, कच्चे विचारों का तथा उत्साह-हीन व्यक्ति हूँ - मुझे डर है कि मैं आपके दल में शामिल नहीं हो सकता। हर आदमी कार्य से मुझे शान्तिप्रिय अवश्य हूँ और जिस किसी तरह भी स्वतन्त्रता आन्दोलन मेरे लिए चन्दा मैं देने को तैयार रहूँगा।" - सरदार ने मेरी बात को सुन अपने साथियों पर चारों ओर निगाह दौड़ाई - मानो उनकी राय पूछ रहे हों और कहा - "कायर! तुमको ले जा रहे हैं पर यदि तुम हमारे [illegible] के बारे में भी किसी से चर्चा करोगे तो तुम्हें जिन्दा दफना दिया जायगा। अविवाहित पुत्र मुझे फिर उस गुफा से बाहर लाया गया और मेरी आँखों पर पट्टी बाँध दी गई। फिर अविश्वसनीय रीति से जीवनयात्रा के बाद मैंने अपने को अपने घर में पाया। इस काण्ड से मैं अपने वतन पर जीवन देने के लिए "क्रान्तिकारी-दल" बना गया।

४ महीनों में ही "श्यामलाल" नाम सारे पंजाब में मशहूर होगया। इतने की आवश्यकता नहीं कि मैं B.A. में सफल नम्बरों से पास हुआ और भाग्य से सी. आई. डी. विभाग के एक उच्च पद पर लगा दिया गया। अनन्तर फिर भाग्य ने जोर मारा. उन दिनों पंजाब में जगह २ छोटे २ लुटेरे गिरोह डाकू आदि दिनदहाड़े पुलिस की नज़रों में धूल झोंक कर लिये जाते थे। जनता हैरान थी और पुलिस परेशान - पर पता कुछ न चलता था। देखते ही देखते बड़े २ अंग्रेज अफ़सर, शहर के नामी गरामी बाबू सेठ लोग लूट लिये जाते थे और पुलिस कुछ न कर पाती। खैर - मैंने इन सब बातों का पता लगाने का भार अपने ऊपर लिया और भेष बदल दिन रात नहीं गर्मी की परवाह किये बिना सम्पूर्ण पंजाब की गली २ खोज डाली। इस कठिन मेहनत के फलस्वरूप उन सब डाकुओं का - जिनके लिए पुलिस आसमान पाताल एक कर रही थी - मैंने सबका पता लगा लिया। उनके अफ़सरों पर मेरा रौब तथा जनता की निगाहों में मेरी इज़्ज़त बढ़ गई। इसके बाद २, २½ वर्ष तक कोई

महत्वपूर्ण कारण नहीं थी। इतना कह कर भाई जी ने लम्बा श्वास लिया – जैसे कि कोई चीज़ ज़बरदस्ती बाहर उगल रहे हों। खैर – कुछ देर बाद बोले –

बात १० वर्ष पहिले की है – Office से आकर मैं अपने बिस्तरे पर आराम करने को बैठा था – जाड़े काल का समय था। बाहर बड़ा कोलाहल मचा हुआ था जो कि धीमे २ शान्त होरहा था। – मैंने अपने कपड़े उतार कर खूंटी पर टांगे और आज का ताजा समाचारपत्र लेकर पढ़ने लगा – आंखें शीर्षक पर जाते ही मैं आश्चर्य के मारे उछल उठा। अपना हाथ से सिर थाम – लिखा था "किंग E. G. के भीषण अत्याचार – सेठ जी की हत्या" मैंने उछल कर अखबार हाथ में ले लिया और पढ़ने लगा – पढ़ता जाता था और इन आंसुओं को गालों पर बहने देता जाता था। तुम जानते होगे कि वीरेन! सेठ जी का हमारा घर का नाता था। अपनी नेकनी प्रकृति से कंजूस, अहंकार और अभिमानी पड़ोसियों को छोड़ २ कर उन्होंने मेल जोल किया था – फिर भी वे तो हमारे सम्बन्धी थी। खैर – मैं इन्हीं विचारों में मग्न था – सोचता था कि अब की छुट्टी फिर से इसका पता लगाऊंगा और अपराधियों को फांसी पर लटकवाऊंगा – तकजाम उन्हें अवश्य आएगी। ... पर डर था, मेरी आंखें के आगे अंधेरा छाता गया और उसके बाद जब मेरी

आंखें खुलीं। मैंने अपने को एक बन्द स्थान में पाया-
हाथ पैर रस्सियों से जकड़े हुए थे। मुझे लगा कि
आया कि मैं कहाँ हूँ। एक पहरेदार वहीं खड़ा था। वे
[illegible] वालों को [illegible] को लेकर चलना पड़ता है
न। मैं- कुछ देर बाद दो आदमी आए और मुझे एक
कुएँ के किनारे। मैं हैरान था - कैसी आग [illegible] से कहीं
नीचे पहुँच गई। कहीं धुआं - कहीं [illegible] - और कहीं
देखा कि मुझे उनकी प्रतिमा [illegible] लगी - [illegible]
[illegible] भी [illegible] [illegible] [illegible] के उठा। [illegible] न
मालूम अब क्या होगा - उनके के [illegible] कोई
और देख और [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible]-
[illegible]! तुम ?- [illegible] था मैं उनके [illegible] का
[illegible] [illegible] [illegible] था। उनकी [illegible] के [illegible]
के [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] थे। कहाँ के [illegible]-
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बाद देखे [illegible] [illegible] [illegible]-
[illegible] - [illegible] के [illegible] आज्ञा का [illegible]
[illegible]। आंखें और [illegible] कर चली- इतने में एक आवाज़
आई "धका" - मैं हैरान - [illegible] [illegible] के
[illegible] - मैं [illegible] के इन्हीं [illegible] के बीच से उसने
कहीं मालूम कि मैं कब [illegible] पहुँच गया - [illegible]
[illegible] [illegible] का [illegible] कर रोया।

निराला

टूटी भास्कर कोटि सूर्य सम
आत्म ज्योति की ज्वाला
गहन गुहा में छिपी कहाँ जा
मलिना रजनी बाला
संगीनों के सम्मुख सीना
खोल अड़ा मतवाला
स्तब्ध चकित सा खड़ा रह गया
शत्रु सैन्य मदवाला
पिया सदा उस मस्ताने ने
विश्व प्रेम का प्याला
जुम्मा मसजिद से था उसने
स्नेह सुधारस ढाला

उस मोहन के आनन में थी
मोहक कोई हाला
शुभ्र स्फटिक सम दिल था जिसमें
पूरित दिव्य उजाला
साफ दिखाई पड़ता सब कुछ
था न अँधेरा काला
कभी स्वप्न में भी न लगाया
हृदय द्वार पर ताला
कौन भेद लेने रशीद ने
हृदय भेद फिर डाला।
याद किया करते हैं उसको
उच्च हिमालयमाला
हरे भरे वन खदुआ गड्न
और उछलता नाला
सुरभित मंजुल फूलों वाला
गुरुकुल-गुलशन आला
विद्व मधुप रसिकों की है जो
प्रिय मधुरस मधुशाला
खून पसीना एक मिलंकर
उसने पोसापाला

राजहंस

प्रतिपल दुख आँसू पी पी कर
पड़ा जीभ पर छाला
पर उसने उफ तक भी की हो
नर था एक निराला
प्रतिपल भक्ति सुरभि पुष्पो को
हृदय बाग से ला ला
श्रद्धानन्द कृती हित 'योगी'
गूथ मनोरम माला

महामना गोखले

(ले॰ ब्र॰ मलदत्त)

नरदेहधारी महान दिव्य विभूतियों के जीवन चरित्र वास्तव में अनेक सामान्य या नीच जीवनों के लिए आदर्श का सा काम करते हैं। जिस प्रकार आदर्श में देखकर मनुष्य अपने दाग एवं दुर्गुणों को हटाने में प्रयत्नशील होता है ठीक उसी प्रकार महापुरुषों के जीवन-चरित्रों को पढ़ने से हम सामान्य जीवन की न सुलझी हुई उलझनों को सरलतया सुलझा सकते हैं तथा दोषान्वे-[illegible]ण के द्वारा दोषों से उन्मुक्त होकर तदनुसार जीवन निर्माण करने में समुद्यत

होते हैं। प्राय करके देखा जाता है कि संसार में जितने महापुरुष हुए हैं उन सबों में भी अनेक महान् आत्माओं की जीवनीओं का खूब अच्छी तरह मनन किया होता है या महापुरुषों की सेवा में सतत रहकर जीवन को उत्तम साँचे में ढालने का प्रयत्न किया होता है। उदाहरण के तौर पर महान् नेपोलियन सिकन्दर सीज़र या किसी वर्तमान सेना को ले सकते हैं। अपने धर्मों के या महान् व्यक्तियों के जीवन को पढ़ने से उनमें जागृत को आश्चर्यप्रद जैसे बली आत्मा का साक्षात प्रादुर्भूति हुई। दूसरे प्रकार के लोगों में, जिन्होंने अपने जीवन की सुन्दर एवं महत्त्वपूर्ण घड़ियाँ किसी महापुरुष के पास रहकर बिताई हैं, हमारे आज के चरित्रनायक भी ठीक इसी कोटि के हैं। जिस प्रकार आर्यसमाज के संस्थापक वेदों के पुनरुद्धारक महर्षि श्री स्वामी दयानन्द जी, पूज्यपाद प्रज्ञाचक्षु स्वामी

श्री विरजानन्द जी के पास रहे थे, बंगाल के प्यारे स्वामी रामतीर्थ जी, श्री रामकृष्ण परमहंस के पास रहे थे ठीक उसी तरह हमारे चरित्र नायक गोपाल कृष्ण गोखले भी श्री न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानाडे के पास रहकर जीवन को इतना उत्तम व प्रतिभा संपन्न बना सके थे।

गोपाल कृष्ण गोखले का जीवन-चरित्र इतना पूर्ण, प्रभावशाली या जीवनोपयोगी समझा जा सकता है जितना एक व्यक्ति बना सकता है। उनके जीवन का अधिकांश भाग अध्ययन, अध्यापन में ही बीता है। आज हम उन्हीं महानुभाव के जीवन-चरित्र पर हलका सा प्रकाश डालने का प्रयत्न करते हैं।

बृहत्तर आर्यावर्त के सुदूर दक्षिण पूर्वी भाग में महाराष्ट्र प्रान्त है। इसने समय २ पर रानाडे, चिपलूणकर, आपटे, भाण्डारकर, आगरकर आदि अनेक प्रसिद्ध नेताओं को जन्म देकर अपनी सौभाग्यवती गोदी में उनका पालन पोषण किया है। आज के हमारे चरित्र नायक महात्मा गोखले

को भी जन्म देने का सौभाग्य इसी प्रान्त को उपलब्ध हुआ है। महाराष्ट्र प्रान्त के रत्नागिरि जिले के चिपलुन तहसील में स्थित कोतलक नामक छोटे से गांव में गोखले का जन्म हुआ था। गोखले वंश का नाम इतिहास में भी बहुत विख्यात है। इस वंश के कई वीर योद्धाओं ने अपने बहादुरी के कार्यों द्वारा महाराष्ट्र को आततायियों के आक्रमणों से बचाया किया है। महात्मा गोखले ने भी अपने चरित्र युक्त कार्यों से समुज्वल किया है।

उनकी बाल्यकाल की एक घटना है। अध्यापक ने गृहकार्य के लिए गणित का प्रश्न करने को दिया था। दूसरे दिन जब शिक्षक ने सब विद्यार्थियों को पूछा तो मालूम हुआ कि सिवाय गोपाल राव के किसी ने नहीं किया। जिससे प्रसन्न होकर गोपाल को प्रथम नंबर पर बैठने को कहा गया। गोपाल एकदम फूट फूट कर रोने लगा। शिक्षक के पूछने पर विदित हुआ कि गोपाल ने किसी दूसरे की सहायता से किया है स्वयं प्रश्न नहीं किया। इस से

उनकी सत्यवादिता का परिचय मिलता है। इस प्रकार की अनेक छोटी मोटी घटनाओं द्वारा उनके जीवन में अलौकिकता का संचार होने लगा।

उनकी सत्यवादिता, सरल जीवन एवं सौम्य स्वभाव प्रत्येक के हृदय को बरबस आकृष्ट करते हैं। अध्यापक होते हुए भी वे स्वयं अध्ययन किया करते थे। परिणामतः अपने गम्भीर अध्ययन एवं अनथक परिश्रम से वे अध्यापकी पद से हटकर फार्ग्युसन कॉलेज के प्रोफेसर बना दिये गए। अंग्रेजी पढ़ाने के साथ २ वे इतिहास, भूगोलादि विषय भी पढ़ाते थे। फार्ग्युसन कॉलेज की प्रगति के लिए प्राण स्वरूप महात्मा गोखले ने तन, मन, धन अर्पण करके शिक्षा क्षेत्र में आशातीत उन्नति की। उनके कई साल यहीं बीते। पर परमात्मा को यह अभीष्ट नहीं था कि इतना महान् पुरुष दुनिया के एक कोने में केवल पढ़ाता रहे।

तदनन्तर समकालीन आदर्श पुरुष न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे के साथ उनका सम्पर्क हुआ। बस, फिर

बना था, उनके दिल में तरह २की महत्वाकांक्षाएं उठने लगीं जो कि सब देश-सेवा के रूप में परिणत हो गयीं। उन उच्चाभिलाषाओं की यथाशक्ति पूर्ति करने के लिए फर्ग्युसन कॉलेज के भावभीनी विदाई लेकर के कार्यक्षेत्र में, देश की स्वाधीनता के खातिर, संसार की भीषण रणस्थली में कूद पड़े। इसे ही कहते हैं - " सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्"।

अब उनका जीवन अध्ययन अध्यापन के अनन्तर राजनैतिक क्षेत्र में पदार्पण करने लगा। रानाडे के पास रह कर उन्होंने अर्थशास्त्र, राजनीति आदि गंभीर विषयों पर अध्ययन करना शुरु किया। नानाविध आवेदन पत्र लिखने की शैली का भी अभ्यास करने लगे। देश की तात्कालिक सर्वाङ्गीण परिस्थिति पर रानाडे के पास बैठकर विचारविमर्श किया। यहां उनकी कार्यपरायणता, धैर्य व सत्यवादिता ने पर्याप्त सहायता दी। इस प्रकार उनके राजनैतिक जीवन का सूत्रपात होता है।

धीरे २ महात्मा गोखले का संबंध उस समय की सार्वजनिक सभा से होगया एवं इस सभा में अदम्य उत्साह, कार्यसंलग्न व राजनैतिक बुद्धि से उनका मान दिन प्रति-दिन बढ़ने लगा। एक समय आया तब कि भारतीय नेशनल कांग्रेस से भी आपका सम्बन्ध होगया। बम्बई की प्रान्तिक कान्फ्रेंस में जो आपने ओजस्वी वक्तृता दी उसके कारण लोगों को विश्वास हो गया था कि अवश्यमेव परमात्मा एक दिन इन से देश हित के लिए महान् कार्य करावेगा। इसी वक्तृत्व कला से प्रभावित होकर महात्मा गोखले के परम मित्र श्री फुपोलकर ने भी यह भविष्यवाणी की कि एक दिन वे भारतीय नेशनल कांग्रेस के प्रेसिडेन्ट होंगे जो कि पीछे से बात सत्य हुई।

भारतवर्ष के अद्वितीय देश-हितैषी नवसारी के वृद्ध पूज्यनीय दादा-भाई नौरोजी के प्रयत्न से विलायत में एक वेलबी कमीशन बैठने वाला था।

जिसमें इस बात पर विचार विमर्श किया
जाता था कि भारतवर्ष का खर्च ठीक
हो रहा है कि नहीं', कितना खर्च प्रतिवर्ष
होता है। इस कमीशन में भाग लेने के लिए
भारत के धुरन्धर राजनीतिज्ञ एवं सब
प्रान्तों के प्रधान प्रतिनिधि भेजे जाने
वाले थे। महाराष्ट्र प्रान्त के प्रतिनिधि के
तौर पर न्यायमूर्ति रानाडे चुने गए थे।
परन्तु उस समय की परिस्थिति के वश होकर
उनको रुकना पड़ा। उस समय सरकारी
कार्यकर्ता सरकार के विरोध में खुल्लम-
खुल्ला रिपोर्ट नहीं दे सकता था। इसलिए
श्री रानाडे ने अपने शिष्य गोखले को
तैयार किया। गोखले बचपन से ही आंग्ल-
भाषा के प्रखर पण्डित थे, ओजस्विनी
वक्तृत्वकला भी थी, लोकोत्तर प्रतिभा एवं
निर्भयता भी थी। इसलिए ६ मास तक रानाडे
के पास शिष्यभाव से अर्थशास्त्र का
गहरा अध्ययन व अनुशीलन करके एवं
देश की परिस्थितियों का स्पष्ट रूप देख-

कर वे विलायत के लिए रवाना हुए। उनके साथ मि. वाचा भी थे। वे भी अर्थशास्त्र के प्रखर विद्वान थे।

वेलबी कमीशन में महात्मा गोखले ने जो वक्तव्य दी उससे आपकी विद्वता, बुद्धिमत्ता व प्रतिभा ही नहीं झलकती अपितु अगाध अनुभव का भी परिचय मिलता है। अपने मनोरम बाल्य-काल में आर्थिक दशा खराब होने से म्युनिसिपालिटी के द्वारा लगाए हुए, रास्तों की लालटेनों के नीचे अध्ययन करते थे समय ही हुए. महात्मा ने धैर्य, निडरता, सच्ची लगन व अदम्य उत्साह की सच्ची एवं अनुपम शिक्षा पाई थी जो उनके सम्पूर्ण जीवन में स्पष्ट प्रतीत होती है।

महात्मा गोखले के सामने नानाविध जटिल प्रश्न किए गए थे। उन सब प्रश्नों को निर्भयता के साथ, देश की परिस्थितियों का ध्यान रख कर के खूब सोपपत्तिक व प्रतिभापूर्वक उत्तर दिए। इतने से भी वे नहीं रुके पर जगह २ सभा-समिति

ों में वक्तव्य देकर, विभिन्न पत्र-पत्रिका
ओं में अपनी प्रभावशालिनी लेखनी
द्वारा नाना लेख लिखकर विलायत
के सदस्यों के हृदयों में भारतवर्ष की
परिस्थितियों का स्पष्ट व शुद्ध स्वरूप
चित्रित करने का महान प्रयास सफल
प्रयत्न करने वालों में से वे एक हैं।

भारत में दो राजनैतिक
दल थे। एक उदार दल व दूसरा अनुदार
दल। महात्मा गोखले उदार दल के नेता
थे जिसे नरम दल भी कहते
हैं एवं बालगंगाधर तिलक अनुदारवादी
या गरम दल के नेता थे। तिलक जी
हरतरह गरम उपायों का अवलम्बन करते
थे जबकि गोखले शान्तिपूर्ण एवं उदार
उपायों से स्वराज्य के लिए प्रयास
करते थे। इसी मतभेद के कारण अखिल
अन्त तक दोनों में असहिष्णुता या विरोध
बढ़ता जाता है। वास्तव में भारतीयों के लिए
शोभा देने वाले उपाय तो शान्तिपूर्ण ही
होने चाहिए। 'शठे शाठ्यं समाचरेत्'

राजहंस

सिद्धान्त का अवलोकन तब तक कुछ नहीं जाना जब तक कि देश स्वाधीन हो। इसप्रकार ऐसे कठोरी के अवसर पर भी शान्ति का सहारा यदि किसीने लिया तो वे महात्मा गोखले ही थे।

सन् १९०४ में, बम्बई में नेशनल कांग्रेस का बीसवाँ अधिवेशन हुआ था। इसी में भारत-हितैषी सर कॉटन कांग्रेस के निर्वाचित सभापति थे। उसमें निश्चय किया गया कि भारत की परिस्थिति का ज्ञान सर्वसाधारण में कराने के लिए एक डेपुटेशन विलायत भेजा जाए। अतएव इस बार भी गोखले तथा लाला लाजपतराय चुने गए। महात्मा गोखले ने इंग्लैंड में अपूर्व-परिश्रम भी खूब किया था। कहा जाता है कि उन्होंने ५० दिन में ४५ वक्तृताएँ दी थीं साथ में लेख लिखना, समाचार के मौलिक समस्याओं को सुलझाना, भारत की परिस्थिति के विषय में विचार विनिमय करना आदि अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। वस्तुतः यदि किसी ने भारत माता की अनन्य सेवा की

विलायत में बड़ी लगन एवं तत्परता से जिस खूबी से है वो निःसंकोच हम कह सकते हैं विवेकशील और महापुरुष थे जिन्होंने अपने शरीर स्वास्थ्य की बिलकुल भी परवाह न करके, तीनों प्रकार की एषणाओं का तनिक भी मोह न करके निर्भयता से काम किया।

वस्तुतः महात्मा गोखले का सारा ही जीवन देश हित के जोरदार कार्यों से भरा पड़ा है। उसमें से तो कुछ अंश ही का विवरण दिया जा सकता है।

ज्यों ही वे दुबारा विलायत जाकर लौटे थे तब उनका शानदार स्वागत किया गया। भारत के कोने कोने में उनके कार्यों की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से की गई। सन् १९०५ में, इण्डियन नेशनल कांग्रेस का अधिवेशन, हिन्दुओं के परम तीर्थ विश्वनाथपुरी (बनारस) में हुआ था। उसके सभापति पद के लिए आप निर्वाचित हुए। महात्मा गोखले ने मद्रास, बंगाल इत्यादि सर्व प्रान्तों का भ्रमण कर, सूक्ष्म निरीक्षण कर परिस्थितियों का स्पष्ट ज्ञान करने के उपरान्त सभापति पद से वक्तव्य देने का निश्चय किया था।

वास्तव में कांग्रेस वालों ने गोखले को सभापति बना कर उनके गौरव की विशेष वृद्धि नहीं की अपितु कांग्रेस को सम्मानित किया।

जब इस देश की भारत जातियों की लार्ड कर्जन की अदूरदर्शिता के कारण सर्वसाधारण जनता में असन्तोष की आग धधक रही थी। बहुत से शिक्षित युवकों के मानस सरोवर में नवीन विचार धारायें एवं उच्चाशायें प्रवाहित हो रही थीं। ऐसे समय भारत को ऐसे चतुर नेता की ही आवश्यकता थी जो दमननीति रूप वायु के प्रबल झकोरे एवं असन्तोष रूपी समुद्र की उत्ताल तरंगों से भारत की डूबती नैया को पार लगा सके। गोखले ने सभापति पद से इतनी उत्तम ओजस्विनी वक्तृता दी जिससे भारतीय नवयुवकों के मनोमन्दिरों में स्वाधीनता के रक्त का संचार होने लगा एवं देश उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होने के लिये तेजी से आगे कदम बढ़ाने लगा।

लार्ड कर्जन की अनेकों दमननीतियों एवं भारत वर्ष को अज्ञानान्धकार में धकेलने-वाले कारनामों का निर्भयता पूर्वक विरोध करते हुए महात्मा गोखले ने अपने अदम्य साहस व निडरता का परिचय दिया।

इन राजनैतिक कार्यों को करते के साथ २ सामाजिक सर्व हितकारी कार्य करने में भी गोखले ने कसर नहीं छोड़ी।

इन्हीं दिनों अफ्रिका में भारतीयों पर अमानुषिक अत्याचार किए जाते थे, उनको मनुष्योचित अधिकारों से भी वंचित रखा जाता था। उस समय गोखले की दृष्टि उधर गई। यौवन से ही उन्होंने सम्पूर्ण भारत वर्ष के कोने २ में शिक्षा-प्रसार तथा स्वाधीनता की भावना को उद्बुद्ध करने का बीड़ा उठाया था। साथ २ सामाजिक क्षेत्र में भी यथाशक्ति हिस्सा लेने का प्रण किया था। इसलिए गोखले

अफ्रिका रवाना हुए। जहाज़ से उतरते ही उच्चाधिकारियों ने उनका बड़ी धूमधाम से स्वागत किया। उन्होंने उनसे मिल कर भारतीयों की परिस्थिति पर विचार विमर्श किया। परन्तु सम्पूर्णतया समझौता न होने के कारण विश्वबंधु महात्मा गांधी जी ने सर्वप्रथम असहयोग आन्दोलन करके. लोगों में खूब प्रचार करके अहिंसा तथा सत्य के सिद्धान्तों को लेकर शान्ति पूर्वक समझौता कर लिया।

एक दूसरी महत्वपूर्ण घटना उनके जीवन को अधिक स्पष्ट कर सकेगी। एकबार पूना में प्लेग का प्रलय का तूफान मचा हुआ था, सारे शहर में हाहाकार सी गगन व्यापिनी अग्नि धांय 2 करती हुई अनेकों परिवारों को खलास कर रही थी। ऐसे कठोर समयमें, प्लेग के घर में जाकर रोगियों की देखभाल करते, तन मन, धन से सेवा-सुश्रुषा करते तथा समुचित इलाज करने का काम महात्मा गोखले ने अपने

सिर पर लिया था।

इसी प्रकार स्त्रीशिक्षाप्रचार, बालकों के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होना, अछूतोद्धार, राजनीति द्वारा देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जनता में असंतोष, विप्लव और महत्वपूर्ण कार्य करते हुए भारतमाता की स्वातन्त्र्यबलि वेदी पर अपने प्राण समर्पण कर दिए।

उनकी मृत्यु पर सम्पूर्ण भारत में ही नहीं अपितु देश देशान्तरों में शोक मनाया गया। विशेषतया भारत के राजनैतिक गगन में शोक के काले बादल छा गए, राजनीति-व्योम में चमकता हुआ सितारा अन्यत्र छिप गया। प्यारी भारत माता का अनन्य सपूत अपने 34 करोड़ भाइयों को शोक निमग्न करके अलग हो गया यद्यपि उनका भौतिक शरीर पञ्चभूतों में मिल गया पर उनकी कीर्तिपताका अद्यावधि राजनैतिक आकाश में फहरा रही है। उनके अपने हाथों से सींचा हुआ भारत सेवक समिति रूप फुलवारी

आज तक दिग् दिगन्तों में उनके शुभ यश-सुगन्ध को फैला रही है।

महात्मा गोखले को हम कुछ शब्दों में इस प्रकार define कर सकते हैं कि वे राजनैतिक सन्यासी एवं निष्काम कर्मयोगी थे। राजनीति में महात्मा गान्धी जी भी उनको अपना गुरु समझते थे। महात्मा गोखले की जीवनी का अध्ययन व मनन करना देशसेवा के लिए पवित्र हृदय एवं पवित्र विचार है। वस्तुतः जिन लोगों का ध्येय ही यही है कि eat, drink and be merry उनका हृदय उपर्युक्त सात्विक व पुनीत भावनाओं का अवलम्बन नहीं हो सकता।

गोखले की महान् एक खास विशेषता यदि हम जानना चाहें तो वो यह है कि वे देशसेवक होते हुए भी राजभक्त थे। उनकी देशसेवाएं जितनी अमूल्य हैं उतना ही सरकार के हृदय में उनके प्रति आदर भाव भी है। साधारणतया यह

होता है कि देश सेवक राजद्रोही गिना जाता है तथा राजभक्त देश द्रोही गिना जाता है। पर इनमें दोनों का सुन्दर सामंजस्य है।

संस्कृत में एक श्लोक है कि

जगद् ध्रुवं स्याज्जगद् ध्रुवं स्यात्कीराङ्गना
यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारस्थ नीडान्तर संनिरुद्ध जानीहि
तन्मण्डन पण्डितौक।

जिस प्रकार पं मण्डनमिश्र के घर में सात्विकता व संस्कार थी धर्म के गहन विषयों पर चर्चा किया जाती थी एवं गोखले के घर उनकी लड़कियाँ भी राजनीति की जटिल उलझनों को सुलझाने में व्यस्त रहती थी। उनके सारे ही परिवार में राजनीति का प्रभाव अविराम गति से प्रवाहित होता था।

राजहंस

संक्षेपतः, वास्तव में प्रत्येक राष्ट्र का इतिहास उस देश के महा-पुरुषों का जीवन-चरित्र होता है। महात्मा गोखले महापुरुष थे। उनका जीवन स्वार्थत्याग और सेवा शुश्रुषा से ओत प्रोत है। भारत वर्ष के इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा। उनका सब से बड़ा त्याग एवं स्थायी प्रतिमूर्ति 'भारत सेवक समाज' है जिसकी स्थापना उन्होंने अपने ही सुदृढ़ हाथों से की थी। उनका जीवन आदर्श घटनाओं से परिपूर्ण है।

अन्त में, सर्वस्व अर्पित करने वाले, अपने स्वास्थ्य का ख्याल न करके अपने प्रिय भारत माता की स्वाधीनता के लिए, देश की भोली जनता को उनके अधिकारों की

स्थान बनाने के लिए सदा सतर्क कार्यक्षेत्र में रहने वाले, निष्काम कर्म-प्रवीण, राजनीति क्षेत्र की समुज्ज्वल उपज महात्मा गोखले को शब्दशः श्रद्धा से जन्मों की अञ्जलि समर्पित करता हूँ। साथ उनके धैर्य, साहस एवं निर्भयता की मुक्तकण्ठ से सराहना करता हुआ [illegible] लेखनी को विरमित [illegible]।

कबीर

आज से कई हजार वर्ष पूर्व भारत-वर्ष संसार में सब देशों का गुरु समझा जाता था। यह क्यों और किसलिए? क्या इससे आप लोगों में से कोई अनभिज्ञ है? उस समय भारत में धन धान्य बहुत था, लोगों को खाने पीने, उठने बैठने, सोने-जागने आदि किसी प्रकार की तकलीफ न थी। क्या केवल इसलिये? नहीं नहीं, इन सबों में जो प्रधान कारण है वह है यहां के जन समुदाय की

आध्यात्मिकता की ओर अभिरुचि। सृष्टि के आदि काल का सिंहावलोकन कीजीये आपको ज्ञात होजायगा कि भारत सदा अपने योगियो और सन्तो की आध्यात्मिकता के लिये ख्यात रहाहै।

अभी २-४ सदीया न बीती होगी जब कि उत्तरीय भारत मे एक ख्यात नामा योगी हुए थे। जिनके नाम से शायद आपमे से कोई भी अपरिचित न होगा। स्वामी रामानन्द असाधारण आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न पुरुष थे। उत्तरीय भारत की वर्तमान रामवत-सम्प्रदाय आप ही की प्रेरणा का मूर्तिमन्त फल है। राम मन्त्र से सर्वसाधारण जो परिचित दीखतोहै उसका श्रेय आपही को है। आपही के सुयश गान से नानक का आदि ग्रन्थ गौरवान्वित है, कबीर के साम्प्रदायिक ग्रन्थ सुरक्षित है, और इसी प्रकार न जाने

अन्य कितने ही साम्प्रदायिक ग्रन्थ आदृत और प्रचारित हैं। इस तनधारी राम से बड़े २ उच्च व्यक्ति भी अपनी समता न तोड़ सके। आम जनता की तो बात ही क्या। भारतवर्ष के उस काल में अत्यन्त सहृदय और उच्च-चेता यह प्रथम महात्मा हैं जिन्होंने नाई चमार आदि सभी कौमों से समान बर्ताव और स्नेह किया। इनकी कार्यावली पर दृष्टि दौड़ाइये तो ज्ञात होगा कि रैदास सदृश चमार और कबीर तुल्य जुलाहे पर इनके सत्संग ने क्या कार्य किया? साथ ही यह भी ज्ञात हो जायगा कि एक साथ इतने अधिक शिष्य किसके अलौकिक प्रताप से जगद् विख्यात हो गये हैं! अस्तु

आज से करीब २ साढ़े तीन सौ साल की बात है, जब कि यवनों के अत्याचार हिन्दुओं पर एक बड़े परिमाण में हो रहे थे, साल दो साल में खतम न हुए अपितु लगातार ढेढ़ सौ-दो सौ वर्षों तक जारी हुए। इन्हीं अत्याचारों और यन्त्रणाओं के परिणाम

स्वरूप अनेक महात्माओं ने जन्म ग्रहण किया। किसीने ठीक कहा है- काल की कठी आवश्यकताएं ही महात्माओं को जन्म देती हैं। निराश्रितों को तिनके का सहारा (महात्मा लोग उन अत्याचार पीड़ितों की शस्त्र ग्रहण करके रक्षा करेंगे ? क्या ये लोग कहीं से हथियार उत्पन्न कर लादेंगे ? नहीं - नहीं, इनमें वह अलौकिक और दिव्य शक्ति तथा तेज है जिसकी बदौलत ये असंभव को संभव कर देंगे, अन्धे को दृष्टि शक्ति और बहिरे को कान देंगे अपनी आध्यात्मिकता के बलपर)। विपत्ति में ही दुनिया के ध्यान की सूझती है। उस समय प्रचलित सगुण उपासना पर लोगों का विश्वास न रहा था। क्योंकि अनेकों उदाहरण- ऐसे थे जिनके कारण लोगों को समय समय पर अनेक प्रकार के घाटे और हानियां सहनी पड़ी थीं। उदाहरणार्थ- सोमनाथ के मन्दिर को लेसकते हैं। अतएव स्वभावतः

लोगो का ध्यान अन्य धारा के बहाव की ओर आकृष्ट होना था और आविष्कार हुआ भी यही। लोगो ने निर्गुण उपासना का ही परीक्षण रूपसे, आश्रय लेना श्रेयस्कर समझा। साथ ही मुसलमानो मे कोई विशेष भेदभाव न देखकर तथा मिलकर काम करने मे ही भला देखकर- हिन्दुओ का ध्यान भी पतित मनुष्यो के कामो से मनुष्यता का कार्य करने की ओर गया और इसी के परिणाम स्वरूप - नामदेव दरजी, रैदास चमार, दादू धुनिया और कबीर जुलाहा आदि अनेक व्यक्तियो के नाम आजतक भी सर्व साधारण से आदर और श्रद्धा से लिये जाते हैं

वास्तव मे कबीर का जितना मान होना चाहिए था उतना नहीं हुआ। यह बात

केवल कबीर के लिये विशेष हो - यह बात नहीं यह तो यहाँ की मानो परिपाटी ही रही है। आजतक यहाँ के जितने भी बड़े२ कवि, सन्त और महात्मा होगये हैं, उन सबसे यह वर्ताव रहा है। इसी कारण तो भवभूति को कहना पड़ा था

उपत्स्यते न मम कोऽपि समानधर्मा,
कालोह्ययं निरवधि विपुला च पृथ्वी ॥

हाँ, तो मैं कह रहा था —

कबीर को एक मत प्रवर्त्तक रूप मे देखे जाने से उसका यथोचित मान न हो सका। अस्तु उसकी कविताएं इतनी जटिल - गूढ़ और गम्भीर हैं कि उसे सब कोई नहीं समझ सकता। उसमें आध्यात्मिक अनुभूतियों का चित्रण है। वह चित्रण किसी२ स्थान पर इतना धुन्धला पड़ गया है कि उसे आम

राजहंस

आम जनता भी नहीं समझ सकती है। कविताओं से वह एक चैतन्य - प्रकृति का व्यक्ति प्रतीत होता है। वास्तव में वह एक क्रान्तिकारी कलाकार था जिसने परम्परागत बेड़ियों को काट फेंका और एक नवीन धारा का प्रचलन किया। वह अपनी आत्मा का दास था - जो विचार दिल में आते उन्हीं को कविता रूप में रख देता था। उसने इस बात पर कभी ध्यान न दिया कि लोग उसे क्या कहेंगे। यहाँ-तक कि उसने किन्हीं कारण विशेष वश अपने और पराये (मुगलों) दोनों के समाजों पर कुठाराघात किया और लोकापवाद का कुछ ख्याल न किया। यद्यपि वह निरक्षर था फिर भी उसकी कविता में उत्साह और ओज की मात्रा पर्याप्त है। मनुष्य

पुस्तके पढने मात्र से पण्डित नही हो जाते। मनुष्यता के लिए तो कोई अन्य ही वस्तु विशेष अपेक्षित है और वह क्या है? जैसा कि कबीर स्वय कहते है:--

पोथी पढि पढि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का पढे सो पण्डित होय॥

यह प्रेम चीज क्या है? आज इसीपर थोडासा बहुत विचार करना है क्योकि कबीर के काव्यो के साथ २ तथा स्वय कबीर के साथ भी इसका अटूट सम्बन्ध है। इससे पूर्व कि मै अपने विषय पर आऊँ, दो-चार शब्द और कह देना अनुचित एव अप्रासगिक न होंगे।

किसी महा पुरुष पर विचार करने पर सबसे पहिला सवाल जो अकसर लोग किया करते है - उसी पर दो - चार शब्द कहदेना चाहता

हू। और वह प्रस्तुत महात्मा के विषय मे, उसने लोगो के लिए क्या २ कार्य किये?

उसने केवल पुरन या साहित्य सेवा के लिये कोई काव्य रचना न की अपितु उस सत्पुरुष के सदेश का तथा उसके व्यक्तित्व का लोगो को बोध कराने और पारस्परिक सद्भाव का अपसारण करने के हेतु काव्य रचना की। साधही सत्य की मीमांसा और माया की निस्सारता का चित्र बडी ही उत्तम तथा हृदय ग्राही किया है। वह पाखण्ड पने का घोर शत्रु था। उसने ईश्वर और माया की जो मीमांसा की है वह बुद्धि का विषय नही अपितु अनुभूति का विषय है। इसी कारण तो उसकी कविता मे स्थान २ पर दुरूहता आगई है।

कबीर ने शरीर और सौन्दर्य का वर्णन न कर आत्मा तथा हृदय की अनुभूतियों का वर्णन किया है। आत्मा का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करना बड़ा ही दुष्कर है। वह एक रहस्य वादी कवि था — इसी रूप में उसने आत्मा और परमात्मा के एकीकरण और आत्मीयता का जो विवेचन किया है वस्तुत एक अद्भुत एवं सुन्दर चीज है। इसी आत्मा और परमात्मा के एकीकरण को हम रहस्य वाद या अद्वैत वाद कह सकते हैं रहस्य वाद जीवात्मा की वह अन्तर्हित प्रवृत्ति विशेष है जिसमे वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना स्थिर – शान्त एवं निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध इस हद तक बढ़ जाता है कि आत्मा और परमात्मा मे अभेद या

सा प्रतीत होता है। अर्थात् आत्मा में परमात्मा के गुणों का प्रदर्शन होने लगता है और परमात्मा में आत्मा के गुणों का। इस संयोग से एक प्रकार की उन्मत्तता पैदा होजाती है। इस अद्भुत प्रेम में चंचलता का कोई स्थान नहीं है। इस अवस्था में आराध्य और आराधक होजाते हैं तथा "मैं" "मैं" के लिये कोई स्थान नहीं रहता। इसीलिये तो कबीर कहता है: —

खालिक खलक, खलक में खालिक
सब घट रह्यो समाई।

अर्थात् परमात्मा और जीव एक ही हैं और वे प्रति पुरुष में विद्यमान हैं। अर्थात् रहस्यवाद वह अलौकिक विज्ञान है जिसमें अनन्त परमात्मा से सम्बन्ध करने की इच्छा प्रबलतम हो। रहस्यवाद की सीमा

तक पहुंचने के लिये मनुष्य न जाने कितनी साधनाए करने के बाद मिलता है। इसमे प्रथमतः मनुष्य आराधना करते २ एक अलौकिक दिव्य विभूति को देखकर चकित होजाता है और अपने आपको भूल जाता है। शनै २ हृदय की सभी भावनाओ और वासनाओ का स्थान प्रेम ले लेता है। आत्मा और परमात्मा मे मानो स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध होता है। दोनो प्रेम मे इतने उन्मत्त और पागल होजाते है कि कि दोनो मे कोई मध्यस्थ की जरूरत नही रहती। यही आत्मा और परमात्मा का एकीकरण रहस्यवादियो की चरम सीमा है। इस मिलन की अनुभूति को व्यक्त करने के लिये संसार के शब्दो मे कोई सामर्थ्य नही है क्योंकि मानव भाषा इतनी ओछी है और आम जनता के

विचार इतने उथले है कि उनमें रहस्यवाद की अनुभूति समा नहीं सकती। इसी कारण ही तो मुस्लिम संत मंसूर को 'अनल हक्क' (मैं खुदा हूँ — अहं ब्रह्मास्मि) कहने पर मुस्लिम वलीयों ने ईश्वर विरोधी करार कर, नानाविध यन्त्रणाएं देकर फांसी पर लटका दिया था। हाँ, तो मैं कह रहा था कि रहस्यवाद और अद्वैतवाद का उद्देश्य एक ही है और अद्वैतवाद और सूफीमत में बहुत कुछ साम्यता है।

अद्वैतवाद में आत्मा और परमात्मा की वास्तव में एक ही सत्ता है। किन्तु माया के कारण दोनों में भेद दिखाई देता है। दोनों एक ही शक्ति के दो रूप हैं किन्तु मायारूप परदे के कारण दोनों अलग हुए रहते हैं जब माया उपासना–ध्यान

आदि के द्वारा स्नान प्राप्त कर नष्ट होजाती है तो फिर आत्मा और परमात्मा का भेद अभेद स्पष्ट होजाता है। इसी बात को कबीर ने किन शब्दों मारा वर्णित किया है — जरा ध्यान कीजिये

जलमे कुम्भ है, कुम्भ मे
जल है बाहिर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि
समाना यह तत कथौ गियानी॥

अर्थात् घड़े की फूटते ही अन्दर बाहर दोनो जल एक होजाते है उसी प्रकार माया के परदे के हटते ही आत्मा और परमात्मा एक होजाते है यही अद्वैतवाद का सिद्धान्त है। यह अद्वैतवाद का सिद्धान्त हिन्दू दर्शन शास्त्र का एक अग है। इसके प्रचारक थे शंकराचार्य, जो कि ८वी सदी मे हुए थे। उसी समय फारस मे सूफी

मत का प्रादुर्भाव हुआ था। ये लोग परमात्मा को स्त्री आत्मा को पुरुष रूप देते थे। इनके यहाँ माया को कोई स्थान नहीं दिया गया। इनके यहाँ प्रेम को प्रधानता दी गई है। प्रेम ही कर्म है। प्रेम ही धर्म है और प्रेम ही सबका मूलाधार है। प्रेम के नशे की खुमारी बहुत महत्व पूर्ण है। इसी खुमारी की बदौलत ही तो ईश्वरानुरक्ति होती है। इसी को कबीर ने निम्न शब्दो मे स्पष्ट किया है —

हरि रस पीया जानिए कबहुँ न जाय खुमार।
मैं मता घूमत फिरैं नाही तन की सार।।

सूफी मत मे आत्मा, परमात्मा रूप की आग से विरह होता है और उसके हाथ की शराब पीने को तरसता है। उसके द्वार पर प्रेम-भिक्षा की याचना करता है। ईश्वर एक दैवी स्त्री

मे उपस्थित होताहै। कबीर ने इसको ठीक विपरीत रूप मे कल्पना कर – उसमे प्रेम की पुट देकर रहस्यवाद का निर्माण किया है। दोनो ही आत्मा और परमात्मा के एकीकरण को स्वीकार करते है। रहस्यवाद का अभिप्राय तो आत्मा और परमात्मा का चिरमिलन है। इसी अत्यन्त साम्य के कारण लोग इन्हे एक भी कह दिया करते है। आप लोगो को जो ठीक लगे उसे मानिये। यद्यपि इतना सबकुछ लिखने के बाद भी रहस्यवाद की व्याख्या अधूरी ही रह जाती है। शायद आप लोग मुझे इसके लिये दोषी न ठहरायेंगे क्योकि रहस्यवाद मे मनुष्य की आत्मा उस अलौकिक दिव्य शक्ति की अनुभूति तो करती है किन्तु उसे शब्दों मे व्यक्त नही कर सकती जैसे एक गूंगा जो गुड के स्वाद को स्वयं तो अनु-

नाव करताहै पर उसे अन्य किसी व्यक्ति से नहीं कह सकता। हाँ, एक अलौकिक और अद्भुत आनन्द के भास का संकेत अवश्य कर सकताहै।

रहस्यवाद को यदि हम शरीररूप दे तो इसकी आत्मा है प्रेम। इसी कारणमैंने प्रेम को रहस्यवाद का पर्याय मानकर, उसकी व्याख्या करने की सोची थी। रहस्यवाद मे से यदि प्रेम को निकालदे तो रहस्यवाद कोई चीज नहीं रह जाती। हृदय की सामान्य अवस्था का नाम प्रेम नहीं है प्रेम हृदय की वह अद्वितीय पदार्थ है जिससे जीवन सदा उन्नतिगामी होता हुआ प्रतीत हो। प्रेम का सम्बन्ध ज्ञानसे (दिमागसे) न होकर भावना से (हृदयसे) है। इसी कारण एक मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति उत्कृष्ट

प्रेम कर सकता है किन्तु एक ज्ञानी को शायद इस चीज में प्रवेश प्राप्त नहीं। रहस्यवाद में ज्ञान को प्रधानता न देकर निस्वार्थ प्रेम को प्रधानता दी गई है तभी तो कबीर को कहना पड़ा था कि -

"गुरु प्रेम का अङ्क पढ़ाय दिया,
अब पढ़ने को कुछ नहीं बाकी"।

प्रेम का आदर्श माता-पुत्र, सखा या पिता-पुत्र के व्यवहार में पूर्ण नहीं होता अपितु उनमें स्नेह की प्रधानता है। प्रेम और स्नेह के अन्तर को हमें समझना चाहिये। प्रेम एक मादक द्रव्य है जिसके कारण मनुष्य में उत्तेजना और विह्वलता आजाती है। दिल में एक प्रकार की हलचल और उथल पुथल मची रहती है।

मनुष्य सदा अपने आधार के आराध्य को मिलने के लिये बेचैन और उत्सुक होता है। प्रेम की पूर्णता केवल पति पत्नी के सम्बन्ध में है। इसी कारण ही तो सूफीमत में परमात्मा और आत्मा को पति - पत्नी स्वरूप कल्पित किया गया है। किन्तु इस पति - पत्नी स्वरूप में वासना और सांसारिकता का नाम निशान भी नहीं आने पाया है। किसी प्राणी की पर स्वरूप में घुल मिल जाने की और अपनी समस्त भावनाएं अपने आराध्य देव के चरणों में समर्पित करदेने की अभिलाषा बनी ही रहती है। यही वजह है जिस के कारण बड़े २ रहस्य-

कवियो को आत्मा - परमात्मा की कल्पना स्त्री-पुरुष
रूप मे करती रही है। आत्मा और परमात्मा का
परस्पर इसी प्रेम के लिये तडपना रहस्यवाद की
पूर्णता है। कबीर ने इसी अवस्था के उत्कृष्ट
प्रेम की अभिव्यक्ति की है। यही कबीर की दुनिया
के लिये सबसे बडी देन है।





ऊषा-जागरण

— श्रीकृष्ण

गत मदिर स्वप्न सञ्चित निद्रित,
अनुराग भरी, आशा-रञ्जित;
कोरक से अञ्जलि-कोरों से
करती है स्नेह मधुर-सिञ्चन!
ऊषा है खोल रही स्वनयन।

मादक मरुत उच्छ्वसित हुआ -

कर स्पर्श मृदुल, जग लसित हुआ,

पतली स्वर्णिम बाहें फैला

करती सब का सुख आलिङ्गन।

ऊषा है खोल रही स्वनयन।

है अन्धकार सबका हरती,

उल्लास ज्योति सबमें भरती,

वह स्वयं चूमती, पोंछ रही

देखो, भू के आँसू के कण!

ऊषा है खोल रही स्वनयन।

रामकृष्ण परमहंस

आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व की बात है। यूरोप में भौतिकवाद उमड़ रहा था। वहाँ वह न समा सका और इंग्लिश चेनल तथा भूमध्यसागर में जा गिरा। वहाँ से वह समुद्र की राह जहाजों और तरंगों के साथ अध्यात्मवाद की चिरन्तन रक्षिणी भारत भूमि के तट से आ टकराया। भारतवर्ष में भी अध्यात्मवाद की नाव उड़ चुकी थी। लोग, धर्म की आड़ में निन्दित से निन्दित कर्म करने से न हिचकिचाते थे। धर्म के नाम पर ढोंग करने वालों की कमी नहीं थी। निरन्तर पारतन्त्र्य के कारण भारतीयों की बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी। भारतीय संस्कृति किस चिड़िया का नाम है यह भी उन्हें पता न था।

ऐसे समय, भौतिकवाद की पताका हाथ में लिए हुए, अंग्रेज लोग यहाँ आ डटे और इन भुलक्कड़ों को, पारतन्त्र्य की पहले से भी कठोर जञ्जीर से जकड़ लिया। वे पराजित भारतीयों की सभ्यता और संस्कृति का उपहास करने लगे। लार्ड मेकाले तो यहाँ तक कहने लगे कि भारतीय संस्कृति के ग्रन्थ तीन अलमारियों का स्थान घेर सकते हैं। यही नहीं, उसने इस बेहूदी संस्कृति का आमूल चूल नाश करने के लिए पाश्चात्य शिक्षण पद्धति को भारतवर्ष में जारी किया और भौतिकवाद की नींव डाली। भोले भारतीय इस भड़कीली शिक्षा के दाँव पेंच में फँस गये। वे उसी शिक्षा को सब कुछ समझने लगे। उनको सत्य भी यहीं पर दिखाई देने लगा। किसी कर्तव्य के निर्णय के लिए, पाश्चात्य

का चरित्र सीमातीत था। वे पाश्चात्य सभ्यता में इतने रंग गये कि अपनी संस्कृति पर उन्हे हंसी आती थी, अपने धार्मिक ग्रन्थो को गडरिये के गीत समझने लगे थे और पाश्चात्य शिक्षा को ही अन्तिम प्रमाण मानते थे। पाश्चात्य शिक्षा ने उन्हें स्वार्थ परायणता, स्वच्छन्दता और निरी स्पर्द्धा के घोर नशे में डाल दिया था। उससे वे घोडे बेच कर सो रहे थे। मैकाले की शिक्षा पद्धति की सफलता के लक्षण दिखाई दे रहे थे। पर, "सर्पाणां च खलानां च परद्रव्यापहारिणाम्। अभिप्राया न सिद्ध्यन्ति तेनेदं वर्तते जगत्॥" उस अवस्था में प्रसुप्त भारत को रामकृष्ण, विवेकानन्द, रामतीर्थ और स्वामी दयानन्द जैसे महर्षियों ने जागृत कर दिया।

इन भारत के प्रबुद्ध करने वालों में से श्री स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी के विषय में यहाँ विचार किया जायगा।

स्वामी रामकृष्ण जी की जीवनी एक तत्ववेत्ता की जीवनी है। उनका जीवन उपनिषद् का समन्वयरूप सा मालूम देता है। उनके उपदेशों की अपेक्षा उनका आचरण ही अधिक ज्ञानदेय था। गीता का ज्ञान ही मानो प्रकृष्ट का रूप धारण कर अवतरित हुआ हो, ऐसी उनके जीवन से स्पष्ट झलक मिलती है। उन्होंने सामाजिक और राजनैतिक कार्यों में कोई भाग न लिया था और न लेना ही चाहते थे। उन्होंने अपना जीवन परमात्म प्राप्ति में लगा दिया था। इस परमात्म-प्राप्ति की क्रिया में by product उनका समाज और राजनीति में प्रभाव पड़ा।

पाश्चात्य सभ्यता ने जहाँ अड्डा जमा रक्खा था उस बंगाल प्रान्त के एक छोटे से गाँव कामारपुकुर में सत्यवादी पिता और निःस्पृह माता के घर, आज से १०३ वर्ष पहले उन्होंने जन्म लिया था।

बालक रामकृष्ण को यथा समय पाठशाला भेज दिया गया। उनका पढ़ाई में दिल

न लगता था। हाँ, वहाँ जाकर वे भगवन्नाम को
अवश्य लिखा करते थे। वे उस पढ़ाई से तंग
आगये और एक दिन कहने लगे, "जिस
विद्या से विद्यावान् को केवल केला और
चावल बांधने को मिलते हैं; ऐसी विद्या पढ़ने
से हमें कोई प्रयोजन नहीं।" भला, जिसे बड़े
हो कर विदेशियों पर भारतीय संस्कृति का
सिक्का जमाना था, जिसे भारतीय धर्मग्रन्थों
को पढ़कर दिल्लगी उड़ाने की इच्छा से आने
वाले, यूरोपीय धर्मग्रन्थों के विद्वान् प्रो० मैक्स
मूलर को भारतीय संस्कृति के निगूढ़ रहस्यों
के आवरण को हटा कर आश्चर्यान्वित करना
था - उसे उस वैदेशिक मैकाले की शिक्षा
से क्या वास्ता! वह तो सारे जीवन भर अनपढ़
ही रहा। पर उस विश्वमाता से ज्ञान की याचना
कर परमहंस की पदवी से जग में विश्रुत
हो गया।

वे ब्राह्मण कुल के तो थे ही। इस लिए

कुछ बड़े होते ही दक्षिणेश्वर के मन्दिर के पुजारी का पद मिल गया था। उन्होंने विचित्र ढंग से पूजा करना आरम्भ कर दिया। उनकी पूजा बाह्य आडम्बर या दीखाने की न थी पर-सच्चे अन्तःकरण की श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक थी। वे रोज प्रार्थना करते थे कि—"मां, मेरे पर दया कर। तू मेरे पर दया क्यों नहीं करती। मां, मैं कुछ जानता नहीं और जानने की इच्छा भी नहीं करता। मा मुझे दर्शन दे। मुझे अष्ट सिद्धि की इच्छा नहीं। बोल, मां तू मेरे पर दया करेगी या नहीं?" इस प्रकार की प्रार्थना करने के बाद वे कभी बालक की तरह हर्षित होते, रोने लग पड़ते तथा पृथ्वी पर नाक रगड़ा करते थे। इन भावों में वे इतना उन्मत्त रहा करते थे कि उनको दुनिया की सुध नहीं रहती थी। वे इस भावावेश में विवेक और मर्यादा का उल्लङ्घन कर जाते थे जिसको लिखने के लिए लेखनी को रोकना पड़ता है लोगों ने यह देख कर उन्हें पागल ठहराया। इस पागलपन से बचाने के लिए उन्हें विवाहित कर दिया गया, पर दोनों पतिपत्नी सारे जीवन भर परमात्मा की भक्ति में लगे रहे।

वे अहर्निश 'मा' की हृदयद्रावक पुकारों को लगाया करते, रोते तथा व्याकुल हो जाया करते थे। यदि केशवचन्द्र सेन जैसे लोग उनके दर्शन को

न आया करते तो दुनिया उन्हें पागल ही समझ लेती। दुनिया क्या जानती थी कि यह तो "मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः। असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥" का क्रियात्मक भाष्य था। वे इसी प्रकार की भक्ति में लगे रहे और ईश्वर विषयक गूढ़ ज्ञान प्राप्त किया। उनके निर्वाण के बाद के उपदेश सुन कर दिग्गज पण्डित भी दङ्ग रह जाया करते थे।

इस प्रकार से उन्होंने अपनी इस सफल प्रार्थना के द्वारा संसार को यह दिखा दिया कि भारतीय धर्मग्रन्थों में प्रार्थना का जो उल्लेख किया गया है, उस में सत्यता है। इस प्रत्यक्ष प्रमाण को देखकर अनेक तात्कालिक विद्यार्थियों की प्रवृत्ति अध्यात्मवाद की तरफ झुकी थी, जिन में नरेन्द्रनाथ जो कि भविष्य में विवेकानन्द के नाम से विख्यात हुए, मुख्य थे। उन्होंने ही इनके उपदिष्ट ज्ञान को सारे संसार में फैलाया।

हम, परमहंस जी की इस सफल प्रार्थना को देखकर, यह मानने में झिझक न करेंगे कि जिस प्रकार एक बालक अपनी माता पर पूर्ण श्रद्धा रखकर रोता चिल्लाता, जो कुछ मांगता है वह माता को देना ही पड़ता है,

ठीक इसी प्रकार परमात्मा को मातृस्वरूप देकर और "जैसे माता, रोते चिल्लाते बालक के मांगने पर कुछ न कुछ देती ही है वैसे यह विश्वमाता भी मुझे, रोते चिल्लाते तथा निर्दोषतापूर्वक प्रार्थना करते हुए को, कुछ न कुछ अवश्य देगी ही" ऐसी दृढ़ धारणा करके प्रार्थना करने से सफलता मिलती है।

इस प्रकार से जो उन्होंने सफलता प्राप्त की, उस से विदेशियों पर भारतीय संस्कृति का विशेष प्रभाव पड़ा। सभी ने यह समझा कि वेद गड़रियों के गीत नहीं हैं अपितु इन में कुछ न कुछ तत्व है। प्रो. मैक्समूलर तो इतने अधिक प्रभावित हुए कि इनकी जीवनी तक लिख डाली। जिसमें जीवन वर्णन की अपेक्षा तात्विक उपदेश अत्यधिक मात्रा में है। उन्होंने इन्हें उन्नीसवीं सदी का सच्चा महात्मा कहा है।

परमहंस जी की यह बात बहुत विचित्र और होश युक्त सी प्रतीत होती है कि वे कभी रामनाम सुनते ही समाधि में लीन हो जाते थे, भक्तिमय कीर्तन के श्रवणगोचर होते ही समाधिस्थ हो जाते थे तथा ऐसी अनेक क्रिया परमात्म-

सम्बन्धी छोटी छोटी बातो में उनको समाधि प्राप्त हो जाया करती थी। साधारण बुद्धि से विचार किया जाय तो यह केवल ढोंग ही प्रतीत होगा पर इस प्रकार से सोचा जाय कि जिस प्रकार मनुष्य स्वादिष्ट लगने वाली चीज के नाम के सुनते ही जीभ मे पानी आ जाता है या विशेष प्रकार की बात सुनने से उसे भय और क्रोध आ जाता है, उसी प्रकार परमहंस जी को परमात्मा मे अत्यधिक आसक्ति के होने के कारण परमात्मसम्बन्धी कुछ सुनते ही समाधि लग जाया करती थी तो इस में कोई आश्चर्य करने की जरूरत नहीं। यह तो उनकी भगवद्भक्ति को ही प्रकट करता है।

परमहंस जी ने दुनिया को सन्देश दिया कि प्रत्येक धर्म एक ही ईश्वर की उपासना करता है। सभी मार्ग सच्चे हैं- यह उन्होंने अपने अनुभव की एक अधिकार युक्तवाणी से

समस्त संसार को बतलाया। किसी ने उनसे पूछा कि क्या वामाचारी शाक्त भी एक सच्चा मार्ग है? उन्होंने कहा - मन्दिर में जाने के अनेक मार्ग हो सकते हैं मन्दिर की खिड़की या अन्य बड़े छेद में से भी मन्दिर में प्रवेश किया जा सकता है, पर, महाद्वार को छोड़ ऐसा रास्ता क्यों पसन्द करना चाहिए?

उन्होंने हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध आदि सब धर्मों का अनुष्ठान किया था। प्रत्येक धर्म को वे सहानुभूति की दृष्टि से देखते थे। प्रत्येक धर्म के मूल तत्व तक वे पहुंचे थे। उसी के परिणाम स्वरूप उन्होंने यह सन्देश दिया। इस सन्देश के विषय में विस्तृत विचार करने से यह सत्यरूप में साक्षात्कारी होगा।

उनका दूसरा सन्देश मनुष्य के ध्येय के विषय में था। मनुष्य को ईश्वरप्राप्ति का विचार करना तथा आत्मशुद्धि की ओर विशेष

ध्यान देना चाहिए। इस से मनुष्य मनचाहा फल प्राप्त कर सकता है। वृक्ष का मूल आपके हाथ में होगा तो शाखा और पत्ते आप से अलग न रह पायेंगे। यह सन्देश सुनने में तो बड़ा सरल और साधारण प्रतीत होता है। परन्तु उस के वास्तविक रहस्य को जान कर, उस पर अमल करने का यत्न करने वाला व्यक्ति, एक महापुरुष भी बन सकता है।

इस ईश्वर प्राप्ति का साधन उन्होंने कनक और कान्ता का त्याग बताया है। वे मट्टी के ढेले को हाथ में लेकर कहा करते थे- "यह एक जड़ पदार्थ है। मट्टी से अन्न उत्पन्न होता है और जड़ तथा जीवन की रक्षा होती है। इसी से गृह निर्माण हो सकता है, देवी देवता की मूर्ति घड़ी जा सकती है। धन से जो काम हो सकता है वह मृत्तिका द्वारा भी हो सकता है। दोनों ही जड़ पदार्थ हैं और दोनों का परिणाम एक सा है। ऐसा नि-

चार कर वे मन से पूछते थे- "हे मन! इस को ले कर बैठा रहूं या सच्चिदानन्द की प्राप्ति का यत्न करूं।" और वे, "रुपया मट्टी है, मट्टी रुपया है, रुपया मिट्टी है, मिट्टी रुपया है" इस प्रकार बार बार बोलते रहते थे और दोनों को गंगाजल मे फेंक देते थे।

कामिनी के विषय में वे मन से कहते थे- "हे मन! मैं कामिनी से संभोग करूं! कामिनी किस को कहते हैं; यह पहले समझ लेना चाहिए। यह एक अस्थि और मांस का पिण्ड है व मांस और अस्थियों से संगठित अवयवी विशेष है। हे मन! तू विचार कर तुझे जड़ पदार्थ के हाथ बिक जाना है? या जड़ पदार्थ और सृष्टि के कर्त्ता परमेश्वर की प्राप्ति करनी है!"

उनकी साधना का प्रथम स्टेप अहंकार नाश था। अभिमान के दूर हुए बिना हृदय मन्दिर पवित्र नहीं हो सकता, इस लिए उन्होंने अहं-भाव दूर करने के लिए अनेक यत्न किये।

एक दिन उनके मन में विचार आया कि "काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओं का मैंने नाश कर दिया है, अतः अब भय किस बात का?" यह विचारते ही उन में कामवृत्ति जागृत हो गई। उन्होंने कहा, "किसी भी प्रकार का अभिमान करना उचित नहीं।" यदि मनुष्य ध्यान से देखे तो उसे अपने जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ दिखाई देंगी और उसे समझ आजायेगा कि यह एक बड़ा भारी सत्य है।

इस बात को वे शब्दों में ही न रखते रहे अपितु उसे कार्यान्वित भी कर दिखाया। बाल्य काल में उन में वर्णाभिमान तो था ही। रानी रासमनि एक धीवर की कन्या थी। उसके मन्दिर में हम भोजन नहीं कर सकते, ऐसा उनका कहना था। पर, जब उन्होंने अहंकारनाश का बीड़ा उठाया तब वे आस पास के शौचालय साफ करने तथा हरिजनों के द्वारों पर अपने

केशों से झाड़ू देना प्रारम्भ कर दिया था। शायद आप कहेंगे यह तो अति हो गई और अति सर्वत्र वर्जयेत्। पर मैं सोचता हूं, जिस प्रकार से एक दौड़ता हुआ आदमी, दूसरे स्थिर आदमी को धक्का देने के लिए, आ रहा हो तो उसके धक्के को रोकने के लिए, स्थिर आदमी को आगे बढ़ कर तथा दौड़ने वाले आदमी को धक्का देकर अपना बचाव करना आवश्यक हो जाता है। उसी प्रकार अहंकारनाश के लिए, परम हंस जी को इतना आगे बढ़ना पड़ा हो तो इस में कोई अनौचित्य नहीं।

परमहंस जी ने इस प्रकार से अपना सारा जीवन ईश्वर भक्ति तथा लोक कल्याण में बिताया। अहर्निश उपदेश करते रहने से उन्हें गले में व्रण हो गया था। वैद्य और डाक्टरों ने उन को बोलने के लिए मना किया। परन्तु - सत्पुरुष के शब्द सुन अपने को कृतार्थ मानने वाले - उनके

पास आते ही रहे और वे रातदिन वाग्यज्ञ करते ही रहे। परमहंस जी की रुग्णावस्था का समाचार पा लोग चारों ओर से आने लगे। उन्हें आराम की जगह थोड़ी देर के लिए भी चैन न मिली। वाग्यज्ञ ने उग्ररूप धारण किया और परमहंस जी ने उस में उपदेशों द्वारा पूर्णाहुति दी।

देह क्षणभंगुर है। वह यथासमय नष्ट होगा ही। परन्तु उनके वे दिव्य उपदेश आज भी अनेक देहों में चैतन्य ला सकते हैं। उनके उपदेशों को स्वामी विवेकानन्द जी ने देशदेशान्तर में फैलाया और भौतिकवाद की तरफ बहते हुए लोगों को अध्यात्मवाद का दिव्य मार्ग दर्शाया। परमहंसजी की शुद्ध अध्यात्म शिक्षा, अंग्रेजी पढ़े लिखों की समझ में न आ सकती थी। स्वामी विवेकानन्द जी ने उस शिक्षा को तात्विक भाषा में रख कर संसार को दिखाया कि इस शिक्षा से कैसे जीवन सुधार हो सकता है। इसी सूत्र को हाथ में ले भगिनी

निवेदिता ने हिन्दू सामाजिक जीवन और राष्ट्रीय जीवन का रहस्य प्रकट किया। आज भी परमहंस जी के वे उपदेश पाये जाते हैं, उससे वही लाभ उठा सकते हैं जिनको उसकी भूख हो, उनके प्रति व्याकुलता हो।

जिस प्रकार अन्न सेवन करने के बाद उसका पाचन स्वयमेव होता रहता है, इस प्रकार उनकी उच्चसाधना के बाद भारतीय संस्कृति का माहात्म्य स्वयमेव प्रकट हुआ जिसको देखकर संसार आश्चर्य में पड़ गयी और भारत का सिर गर्व से ऊंचा हो गया।

— o —

वह साहित्य सम्राट

हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद पर अभिषिक्त हुआ देखने को आज लाखों करोड़ों हिन्दीभाषा भाषी और हिन्दी प्रेमी सज्जन लालायित है। भारतके दूर्भाग्यकी हिन्दी मातृभाषा है। भारतकी यह सौभाग्यकी लिपि है। हमारी हिन्दी भाषा और साहित्यके इतिहासमें गद्यका और गद्य साहित्यका बहुत बड़ा भाग महत्व है। इस बीसवीं सदीकी सभ्यताकी दौड़में यदि किसी भाषाने जिन्दा रहना हो तो उसे अपने गद्य साहित्यको विकसित करना होगा। ऐसे गद्य साहित्यके होनेपरही कोई भाषा पुष्ट होसकती है। हिन्दी साहित्यके इतिहासमें आधुनिक समयको गद्य काल कहा गया है। हिन्दी गद्य गत शताब्दिमें ही निर्मित है। फलफूलकर वर्तमान दशातक पहुंचा है। गद्य लेखकोंके निरन्तर प्रयत्नके बावजूद आजभी हिन्दीका गद्य साहित्य स्वर्गीय श्री प्रताप नारायण मिश्रके शब्दोंमें पोपला है।

कुछ इनी गिनी रचनाओंको छोड़कर शेष सभी रचनायें बड़ी घटियाहैं। और मौलिक रचनाओंका तो सर्वथा ही अभाव सा प्रतीत होता है। प्रारम्भमें अंग्रेजी भाषा के पुष्ट गद्य साहित्यको देखकर ही हिन्दीहितैषियों का भी ध्यान इस अभावकी पूर्तिकेलिए गयाथा। हिन्दी भाषा के गद्य साहित्यकी नींव भी सदाशय अंग्रेज सज्जनों के प्रयत्नसेही हुईथी। सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् गिलक्राइस्ट के अनुरोधपर अबसे १२५वर्ष पूर्व श्री-लल्लूलालजी व श्री सदलमिश्रने हिन्दीगद्यकी नींव डालीथी। हिन्दीके गद्य साहित्यकी इस समयमें काफी उन्नति हो चुकी है। जिससे कहानी, ऐतिहासिकग्रन्थ उपन्यास और कहानियों के क्षेत्रमेंही हिन्दी गद्यका साहित्य विकसित हुआ है। शेष अंग अभी अधूरेही पड़े हैं।

हिन्दीकी प्रारम्भिक दशामें काशीके उपन्यास साहित्यने हिन्दी प्रचारमें पर्याप्त सहायता प्रदान की थी। हजारों लोगों आदमियोंने केवल चन्द्रकान्ता संतति पढ़नेके लिये ही हिन्दी सीखी थी। वह समय

अबभी अनपढ़ था। पढ़नेवालोंका मानसिक क्षेत्रभी अभी परिमित था। नवीन युगकी सुधारणा और राष्ट्रीयता के संस्कारोंसे भरी हुई भारतीय जनतामें पढ़नेकी रुचि पैदा करना उतना कठिन नहीं थी जितना हिन्दीकी प्रारम्भिक दशामें था। बैताल पचीसी किस्सा साढ़े तीन यार किस्सा चहार दरवेश अथवा बंगलेके अनुदित उपन्यासोंकी उस समय धूम मची हुई थी।

हिन्दीके गद्यसाहित्यको और विशेषतः उपन्यास साहित्य को वर्तमान दशातक पहुंचानेवाले कुछ अंगुलियोंपर गिनेजानेवाले कोपी जैसी कलाकार हैं। ऐसी महान् कलाकारोंमें अपनी गिनती सर्वप्रथम करने वाला एक युवकने जिसका नाम मुन्शी धनपतराय था १९०७ में हिन्दी साहित्यमें प्रवेश किया। उस समय उस व्यक्ति ने अपना परिचय साहित्य संसारमें नवाबराय नामसे दियाथा। और आज तो उस व्यक्ति को सबकोई उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द के नामसे जानता है। शुरूमें वह उर्दूका हिमायती था। उस समय वह अदीब और अफसानोंका बादशाह था। और सोजे वतनने ब्रिटिश सरकारको चौंका दियाथा और भारतमें होनेवाले हिन्दीके राष्ट्रीय

साहित्य का भारत ने इसी भाँति परिचय पाया था। सोजे वतन प्रकाशित होते ही जब्त हो गया। सन् १९०९ में प्रेमचन्द जी का यह स्वरूप था।

सेवा सदन प्रेमचन्द जी की प्रथम हिन्दी रचना थी। और उसके बाद तो प्रेमचन्द जी ने इतना ज्यादा हिन्दी लेखन को दिया कि वर्तमान गद्य साहित्य को प्रेमचन्द युग नाम देना अनुपयुक्त नहीं होगा। प्रेमचन्द जी की कुल रचनायें संख्या में ५४-५६ होगी। सेवासदन प्रेमाश्रम रंगभूमि, गबन, कर्मभूमि, गोदान आदि ११ उपन्यासों २४ कहानियों के संग्रहों जिनमें लगभग ३००-४०० कहानियां होगी। ३ नाटकों ७ अनुवाद ग्रन्थों हिन्दी के बाल साहित्य को उन्होंने ४ रचनायें दी जीवन तथा संकलित साहित्य में उनके ४ ग्रन्थ हो

इस साहित्य के अलावा उन्होंने भारत को अपनी कुछ उर्दू रचनायें, विभिन्न अवसरों पर दिये गये भाषण, हंस जागरण आदि से प्रकाशित होने वाला मासिक तथा साप्ताहिक गद्य साहित्य दिया है यह सब कुछ यहां नहीं गिना है—

प्रेमचन्द्र साहित्य पर हिन्दी संसार आज गर्व करता है। क्योंकि वे वही कुछ लिखते थे। वे केवल कल्पनाजगत् में भ्रमण करने को पसन्द न करते थे। और न यही दावा करते थे कि " मैं संसार की सब समस्याओं को हल कर दूंगा। वे कुछ जीवन के किसी एक टुकड़े को अपने हाथ में लेते थे और उसका प्रत्येक पहलु जनता के सामने रखते थे। उनकी प्रत्येक कहानी और प्रत्येक उपन्यास को हम मनुष्य जाति के जीवन चरित्र का एक पन्ना कह सकते हैं।

मनुष्य जीवन का कोई शायद ही पहलू है जिसका चित्रण प्रेमचन्द्रजी ने न किया है। गोदान में वे भारत के ग्राम्य जीवन का चरित्र चित्रण करते दीख पड़ते हैं। तो रंगभूमि में देश की विविध समस्याओं को सफलता से उलझाता हुआ देख पाते हैं। गबन प्रेमाश्रम में किसान उतार-चढ़ावों को देख सकते हैं। मनुष्य की दबी लालसाएं, दहेज प्रथा का दुष्परिणाम, स्त्री की अस्मिता, ये सब चीजें यहां देखने को मिल सकती हैं। वेश्याएं क्यों बनती हैं। सेवासदन में समाज का वातावरण कैसा बना है।

तथा वेश्या जाति का किस प्रकार सुधार और जीवन में
परिवर्तन हो सकता है। यह देखने के लिए और अनाथा
अबला [illegible] निवास करने के लिए सेवासदन का ग्रन्थ रचा है।
सम्मिलित परिवार प्रथा, सौत, अछूतोद्धार, आदि समाज
सुधार संबन्धी विषयों को ले मुक्तजन, गोधन, स्वराज्य आदि
अपनी आपना ओर रहने की मर्यादा सभी कुछ प्रेमचन्द जी की
कहानी साहित्य में देखी जा सकती है। वहां शहरी हैं, गांव भी हैं।
चली लिपिक, राजा रंक, पुरुष, स्त्री, महात्मा, रंगे,
सियार, धूर्त पाप कर्म में पड़ते सिरे के निम्नात आदि सब
कुछ दिख पड़ते हैं। प्रेमचन्द जी ने समाज की प्रत्येक नीचाई
ऊंचाई को प्रगट किया है, जिस समाज के अंगथे, जिस समाज
में वे पल कर बड़े हुए - यह सब प्रेमचन्द जी की कहानी
साहित्य में देखा जा सकता है। वास्तव में वे यथार्थ
वादी थे। प्रेमचन्द जी आदर्शवादी थे। वे समाज का
मर्म रखकर भुला जाने का यत्न नहीं करते थे और अतः
उनकी कहानियों का निर्माण किसी दबाव मिलों पर नहीं
हुआ। जीवन में इसका से कहानी का मसाला लेते थे

और अपनी चतुर तूलिका से एक अभिनव रूपमें सजादेते थे। यही प्रेमचन्दजी की विशेषता थी। जीवन की विभिन्न समस्याओं व संसार में देखकर ही करते थे। उनका सब से बड़ा गुण भी यही था। कई आलोचक उन्हें कृपाका प्रचारक दैत्य कहता था कोई उन्हें एकताका प्रचारक देख। एक आलोचक प्रेमचन्दजी को उपन्यास सम्राट् कहता है इसके खिलाफ विवेचक कहते हैं कि उन्हें उपन्यास लिखने ही नहीं आते। एक ही और में व साहित्य-सम्राट् होते हुए कहता है कि सारा रचीका मालही वास्तव में प्रेमचन्दजी यथार्थवादी लेखक थे उपदेशक और प्रचारक न होकर संसार के दर्शक या चित्रकार थे। इस दुनियाको उन्होंने जिस तरह का अनुभव किया उसे उन्होंने उसी तरह से वर्णित किया। प्रचारक या उपदेशक की किसी उद्देश्यको लेकर किसी खास परिणाम दिखाने की आदत से लिखता है - बोलता है - यदि यह कहानी भी लिखेगा तो किसी खास परिणाम को ही लक्ष्य में रखकर। जो चित्रकार सामने रखता है जिसके अनुसार ही वे ठीक चित्र बनाता हो वह सच्चा चित्रकार है शुद्ध परिस्थ

शब्दों में हम उसे साहित्यिक कह सकते हैं। प्रेमचन्दजी
प्रचारक न होकर साहित्यिक थे। उनके शब्दों में
उपन्यास आदि रचनाओं का किसी आदर्श की
ओर प्रेरित होना ही कोई अनुभव कर सकते हैं कि
सेवासदनके लेखक दालमण्डी की अभागिनी वेश्या
को हटाकर आदर्श सेवासदन बनाना चाहते हैं।
बौद्धिकों भी समस्याओं को क्रियात्मक हल करना चाह-
ते हैं। इससे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि
प्रेमचन्दजी का सेवासदन भारत के कोने२ में
सेवासदन भरकर खुलवा सकता है। समाज के भले-
भले, समाज सुधारार्थ हो श्री जिनकी [illegible]
चाहिये आश्रम पाठशाला विद्यालय खोलने का
सामर्थ्य प्रेमचन्दजी के उपन्यासों में है। सेवासदनको
ही लीजिये इसको आप पढ़ते हैं कि समाज को आज
पतितोद्धार और विधवाश्रम जैसी संस्थाओं की
आवश्यकता है। आजकल, रंगभूमि की हिन्दूमुस्लिम
समस्या का सुझाव यदि हम ग्रहण करें तो दुनिया
भी कहते न थकें हमारी जुबानी राम रहीम कल्याणी-

कुशल कलाकारकी आवश्यकता है जो केवल इतनी
बातकी छाप जितनी मात्रामें रंगभूमिके सूरदास
कायाकल्पके चक्रधर होसकते हैं। एक कला यथा
दार्शनिक शान्ति और व्यञ्जना शक्तिसे अपने
औत्सुक्यको प्रकट करता है उसी प्रकार प्रेमचन्दजीभी
जो देखते थे उस निर्विकार भावसे प्रकट करदेते थे। उनके
ग्रन्थोंमें सामयिकताका भाव विशेष प्रचुर मात्रामें
दिखाई पड़ता है। उनके उपन्यासोंमें चमड़ेभीभी
मिलते। कहानीके विषय भी वही हैं। सविनय अवज्ञा
भंग आलोचनकी तीव्रताभी उनके सूरदास, और चक्र-
धरपर दीख पड़ती है। सत्यके लिये मर मिटनेकी आन
उनके प्रत्येक आदर्श वीरमें दीख पड़ती है। समस्या
पैदाकर हल करनेके शौक वाला लेखक विदेशोंमें उपस्थि-
त मौजूद समस्या, सभी जगहसे चलनेपूर्वक, घटनावस्तु-
में लगा रहता है। किन्तु संसारको यथार्थ स्वरूप-
चित्रण करने वाला जादि जो कुछ दिखता है उसे वैसेही
कर दिखलाता है। प्रेमचन्दजीको इसी कोटिके कलाकारोंमें
सम्मिलित करनेमें परिणाम है। सामयिकता प्रेमचन्दजीमें

कहानियोंकी विशेषताएँ उनकी कहानी यथार्थजीवनके साथ चलती हैं एक पैनी दृष्टि तथा सच्ची हृदय लिये प्रेमचंद एक यथार्थवस्तुको देख उसे व्यक्त करनेकी क्षमता रखता है तथा आदर्शवस्तुकेलिए असाधारण प्रतिभा और कल्पनाकी आवश्यकताएँ होती हैं पहली योग्यता वाला यथार्थवादी कहला सकती है तो दूसरी क्षमता रखनेवाला आदर्शवादी। प्रेमचंदजी यथार्थवादी ज्यादा थे और बहुत ज्यादा अंशोंमें यथार्थवादी थे। आदर्शवादका मुलम्मा उनपर चढ़ न सका था। कहीं कभी आदर्शवादकी कोई झलक उनमें दीख जाय तो उससे उन्हें आदर्शवाद नहीं कह सकते। वे तो मूक जनताके प्रतिनिधि थे। जनताकी ही भाषामें भारतकी करोड़ों मजदूर और किसानोंकी पददलित जनता की करुण व्यथाको भारतीय हृदयकारक को, सदियोंसे आयी पीढ़ियोंसे छिपी जनताकी आवाजको जो प्रेमचंदजीने चित्रित किया था। यही उनकी मुख्य विशेषता थी। मूक भारतीय जनताके भावोंका चित्रणही उनका विषय है उन्हें मानव जीवनमें होरहे आघात

राजहंस

कृत्याकृत्यों से मतलब नहीं है। हृदय की सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूति को चित्रित करने में श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को कौशल प्राप्त है। शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय का व्यक्तिपरिवार और व्यक्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध है। जहाँ तक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रख सकता है। व्यक्ति खोकर मनुष्य जन समाज का अंग बनता है वहाँ प्रेमचन्द्र जी का क्षेत्र प्रारम्भ होता है। इस विषय में व्यक्ति के मानसिक आघात प्रत्याघातों का कोई महत्ता नहीं रह जाती क्योंकि यहाँ समाज का अंग बन चुका हुआ होता है मनुष्य का व्यक्तित्व नगण्य सा पड़ जाता है। रवि बाबू और शरत् बाबू को अपने क्षेत्र बाहर भी सफलता मिली है किन्तु प्रेमचन्द्र जी क्षेत्र से बाहर ज्यादह सफल नहीं बन पाये।

बाबू प्रेमचन्द्र जी अपने समय के उपन्यास लेखकों में जनता के सबसे बड़े व्याख्याता थे। इसके शब्दों में वे शुद्ध भारतीय जनता के लेखक थे। रोमान्टिक सुवास का कोई स्थापक नहीं है तदपर उनका कोई साथ नहीं देता।

फिर भी यह उसीका बस है वह सबके दुःखोंमें काम आता है। जीवनपथ्ति लड़ता है झगड़ता है। और इसीमें मरता है। कायाकल्पके चक्रधरसिंह के दुस्साहस से उनके सभी हितैच्छु घबराते हैं। उनका साथ छोड़ते हैं। पर चक्रधर को इसकी परवाह भी नहीं है। उसे प्राणीमात्रकी परवाह है।

हो सकता है कि प्रेमचन्दजीके पास शरत् बाबूके श्रीकान्तकी राजलक्ष्मी और चरित्रहीनकी सावित्री जैसे, यह भी हो सकता है कि प्रेमचन्दजीके पास श्रीकान्त के व्यक्तित्ववाला, मानवके मानसिक विश्लेषणका ऊंचा तत्व और गोचर न हो किन्तु यह तो मानना ही होगा रंगभूमिका सूरदास, कायाकल्पका चक्रधर अन्यत्र कहीं भी ढूंढनेसे नहीं मिलेगा।

प्रेमचन्दजी यद्यपि व्यक्तिगत मानसिक आत्मा उपन्यासोंका विश्लेषण न कर सके। होने न सकी। किन्तु दुनियाकी यथेष्ट ख़बर भी व्यक्तित्वको सुरक्षित रखकर जनताका हित करना प्रेमचन्दजीकी कृतिमें दीख पड़ता है।

राजहंस

३

गोदान का होरी जीवन पर्यन्त अपनी आनके लिए दुनियाका सामना करता है। भावुकता की सजीवमूर्ति जगानकी धीरबी, कर्म में कुशल, कर्म में कुशल पतिपरायण धनिया गोदान की विशता है। गोदान में जो मेहता के रूपमें लेखक स्वयं बोलता नजर आता है। सम्पादक भैयाजी के प्रतिनिधि रूप पं. ओंकारनाथ के रूप में सम्पादक जी के साथ अन्याय सा किया प्रतीत होता है।

जीवन का प्रत्येक पहलू प्रेमचन्द जी ने उलझाया है उनके सुलझाने की यही खास विशेषता है कि जीवन का प्रत्येक पहलू संसार में जैसे उलझाया गया है वैसे ही उन्होंने सुलझाया है। सपत्नी विवाद में यदि दुनियामें सपत्नियों के विवाद हैं तो हम पहली मनोरम रामप्रिया वसुमती के रूप में देख सकते हैं। संसार में सौतसे परिवार का नाश होगया है तो गोदावरी को भी हम गंगा में समर्पित होते देख सकते हैं। पं. कपरमेश्वर आज भी दुनियामें दीख पाते हैं। तो प्रेमचन्द जी की कहानी भी दूधका दूध पानीका पानी करदिया है। और वह नीर क्षीर विवेक नजर करती आसकती है।

प्रेमचंदजीने ऐतिहासिक घटनाओं को भी लिया है। जिनके कारण वर्तमान समाज का जीवन पलट सकता है। उनमें कोई आदर्श कर सकता है पर यथार्थ को समय आदर्शका स्थान लिया करता है। आजका यथार्थ कल यदि आदर्शका रूप ग्रहण करे तो इसमें आश्चर्य क्या? जो घटनायें कभी यथार्थ रूपमें घटी थी जिनके कारण मानवके मनपर प्रभाव पड़ा था। आज उनका इतिहासमें स्थान है। प्रेमचंदजीकी रानी सारन्धा - [illegible] वीर हरदौल आदि कहानियां ऐसी कोटिकी है।

३०. प्रेमचंदजीका हिन्दी पर बहुत बड़ा ही [illegible] है। हिन्दी साहित्यके भण्डार गद्य साहित्यका उपन्यास कहानी भाग भरने में - पूर्ण करने में प्रेमचंदजीसा सानी व्यक्ति अन्यत्र कहीं भी नहीं दीखती। बाबू प्रेमचंदजीने १५ [illegible] २० हजार लगभग पृष्ठ हिन्दी साहित्यको भेंट किये होंगे। प्रेमचंदजीका साहित्य स्थूल रूपमें थोड़ा ही मिलता है। प्रेमचंदजीकी अन्तिम गोदान और मंगलसूत्रको आलोचक कहते हैं कि ये कृतियां प्रेमचंदजीकी उतरती कलाकी द्योतक है। किन्तु सम्पूर्ण प्रेमचंद साहित्यका

राजहंस

अच्छी तरह गहन मनन के बाद कोई भी कह सकेगा। उनके
रचनाओं में तो प्रेमचन्दजी की प्रतिभा अधिक विकसित हो सकी।

प्रेमचन्दजी ने भावों को लिखा जो संग्रह उनका अच्छा
लोक ही। प्रेमचन्द साहित्य में हम यह रचना भी देखते हैं।
प्रेमचन्दजी को गाँधीवाद जैसा अन्धकार का पक्षपाती
वैसा ही अधिकार प्रतीत होता है। प्रेमचन्दजी की प्रतिभा
सम्पन्न मानव थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा का निर्माण
भी लगाया उससे उन्हें पूरी कामना भी मिली।
प्रेमचन्दजी को न तो संस्कृत विषय हिन्दी से लगाव था।
और नहीं फारसी से उन्नति और भी कोई लाभ।
उन्होंने सदा जनता की भाषा में लिखने का यत्न किया।
गाँव के निवासी जनता की उन्नति - पक्ष का आधार
उनके नामी सुधारक थी। यही प्रेमचन्दजी की सफलता का
मुख्य रहस्य था। उन्हें विवाद पसन्द नहीं था। वे निर्णय
पर पहुँचने का यत्न करते थे। और निर्णय देकर रचनाओं
विभिन्न घटनाओं को दीक्षा करने का यत्न भी करते थे।
संसार को 'सेवासदन' तथा 'प्रेमाश्रम' देकर।
'कर्म भूमि' 'रङ्गभूमि' परमात्मा से 'वरदान' प्राप्त कर,

कश्मीरी प्रेमचन्द जी की सफलतम 'गोर सुरका'
व 'ग्रेमी बंधी' पर 'संगम' कलकत्ता आधारपर
चलेगा। हिन्दी संसारका कुशल, और 'दास सम्पादक'
का 'आगमन' भी प्रेरणादेनेवाला ईश्वर हमारे थे।

नाथ जी ___ - -



मनो-विनोद

राजहंस



दीपक की आभा में

नव-चम्पककलिका से दीपक!
क्या गाऊँ तेरा गुणगान?
सिहर उठेगा मेरे घर में
तेजपुञ्ज कब प्रभावितान?

हे चञ्चल! तू चञ्चल सचमुच,
मद-झूले पर झूला करता,
भव्यभाव भंगी से हिलता
मन ही मन तू फूला करता॥

हिलन-डुलन में है इस मद में कवि भावों की उच्च उड़ान,
कुन्द-कली से हंसते दीपक! मैं क्या गाऊं तव गुणगान।
पीत श्वेत-सा रंग लिये इस कोमल कलिका का खिल जाना,
आह! लुब्धकों ने तोड़े पर आखिर उनका जल जाना॥
क्या तेरे इस किम्पि-पथ में जीव-जड़ चेतन हैं एक समान
नव-चम्पक कलिका से दीपक। मैं क्या गाऊं तव गुणगान॥
तेरे अन्तस्तल में यह क्या झलक रहा नीला सा काला
कवि कल्पना कह रही सहसा नीलकण्ठ का विषमय प्याला॥
बचना हलाहल मत पीना मत छूना तू है मतिमान्।
नव-चम्पक कलिका से दीपक! मैं क्या गाऊं तव गुणगान।
तरुणाई की मदिरा पीकर निशा तिमिर में इठलाते हैं,
"मैं भी कुछ हूं" अकड़ा गर्दन हंसता तू मदमाता है॥
सिर नीचा होता गर्विता का, उदय अस्त में भेद न जान।
नव चम्पक कलिका से दीपक मैं क्या गाऊँ तव गुणगान॥

राजहंस

सूर्योदय में कर्मोदय सम
निशाशान्त विश्राम समय है,
खिलउठता तू रात समय में
प्रातः होता तेरा जीवन क्षय है॥

कितना क्षणभंगुर है यह यौवन
उसपर भी इतना अभिमान?
नवचम्पक कलिका से दीपक
क्या गाऊं तेरा गुणगान॥

नजारा स्वर्णिम श्रेणी का जब
दीपक का नजर आता है
विभीषण- लंका स्वर्ण कलश भी
स्मृति पट पर तर आता है
ताज रश्मि का शीश-चढ़ा है,
दिन दिन बढ़ती जाती शान

कुन्द-कली से हंसते दीपक!
मैं क्या गाऊं तव गुणगान ।।

मुग्ध दीवाने से परवाने
तेरी गोद सजाते हैं।
अकलमन्द हैं, कुछ सशंक हैं,
लज्जावश सकुचाते हैं।

पर क्या! अंधे कूद पड़े हैं,
जल भुन जाता उनका प्राण
नव-चम्पक कलिका से दीपक
मैं क्या गाऊं तव गुणगान ।।

कोपानल, विरहानल बेशक,
शोकानल हैं तेरे रूप,
जन-मन को वे खा जाते
हैं तिनके के अनुरूप ।।

राजहंस

संयम - जल से धोड गिरा नर।
विषम कड़ी ये है चट्टान,
कुन्दकली से हंसते दीपक।
मैं क्या गाऊं तव गुणगान॥

मध्ययुगों की मातायें भी
आश्रय तेरा पा लेती थीं
यवन बवण्डर से बचने को
प्राण न्योछावर कर देती थीं

उस दिव्य धरी का श्रेय तुम्हीं को
विश्वबंद्य तू है अभिराम
कुन्दकली से हंसते दीपक
मैं क्या गाऊं तव गुणगान॥

पवन गीत - गायक है मनहर
सिर आन्दोलन में तल्लीन,

मद सीमा को फांद न जाना
तबला बजता जब धीन धीन ।
मुरझायेगा आनन तेरा,
दिल न होगा तब सम्मान

कुन्दकली से हंसते दीपक
मैं क्या गाऊं तव गुणगान

तू नाशक है पालक भी है
गुणदोषों का तुझ में मेल,
स्नेह जलाता, कृश होजाता
लेता सब दुखों को झेल ॥

तमसावृत्त पगदण्डी में ले
तुझको साधूं मम अभिमान।
कुन्दकली से हंसते दीपक
मैं क्या गाऊं तव गुणगान।

राजहंस

पीड़ि पर की वायु कैसी
शीत उष्णती हो जाती है
हृत्पीड़ा को लेकर दिलकर
दिल की अरमान बनजाती है

दुख विदारक। पुन है दीपक
कितना मानू तव एहसान
कुन्द कली से हंसते दीपक
मैं क्या गाऊं तव गुणगान

मातृवियोगी नयनयुगल का
अश्रु-जलका ढुलका बिन्दु,
तेरी प्रतिमा मोती बनकर
उमगा देती शोकद सिन्धु
पूर्णमासी का चांदा बनकर
लाता नेत्र सिन्धु उफान।

कुन्द कली से हंसते दीपक,
मैं क्या गाऊं तव गुणगान ॥

कुन्दन उठी थी ज्योति तेरी
दुखाश्रु औ' हर्षाश्रु में,
चमक चली थी मूर्ति तेरी
शोकाश्रु औ' प्रेमाश्रु में।

एक में थी नमकीन पीड़ा
थी दूजे में मोती की खान।
कुन्द कली से हंसते दीपक
मैं क्या गाऊं तव गुण गान ॥

मंदिर में क्या मजार में क
खंडहर के उन टीलों में भी
समदर्शक है ज्योति ते
आमों में भी भीलों में भ

राजहंस

ऐसी आंखे हमको देदे,
स्थित जिन है दीप ! ललाम
कुन्दकली से हंसते दीपक!
मैं क्या गाऊं तव गुणगान ॥

चन्द्र-चमकता सूरज बल से,
तू चांद की एक किरण,
चमका देती दुनियां सारी
वही सुन्दरी एक किरण

रश्मि का तू तांता देदे,
अंधेरा का हो अवसान।
कुन्द कली से हंसते दीपक,
मैं क्या गाऊं तव गुणगान ॥

भारत दीपक, अन्तिम आस
अन्तिम इच्छा एक यही

मन मन्दिर में ज्योति जलाकर,
पाप भस्म मैं करूं यहीं ॥

अग जग के हे उज्ज्वल दीपक
तुमको कोटिक प्रणाम!

कुन्द कली से हंसते दीपक,
मैं क्या गाऊं तव गुणगान।
सिहर उठेगा मेरे घर में,
तेज-पुञ्ज कब प्रभा-प्रतान ॥

महावीर प्रसाद द्विवेदी

आज कलकत्ता की विशाल और सुन्दर सड़कों पर घूमने वाले यात्री, आज से एक सदी पूर्व कलकत्ता की क्या हालत थी, इस बात को सोच नहीं सकते, उस समय यहां कितने भयानक और बीहड़ जंगल थे। दिन में भी शेरचीतों की गर्जनाएं, हाथियों की चिंघाड़ें और इसीप्रकार अन्य अनेक वनप्राणियों की दिल दहलादेने वाली ध्वनि प्रतिध्वनियाँ अनायास ही कर्णकुहरों को विदीर्ण कर दिया करती थीं। इनके इनके मनुष्य का दिन में गुज़रना असंभव था। दिन दहाड़े डाका पड़ना तो आम बात थी। ऐसे प्रदेश को जिन श्रमजीवियों ने एक विस्तृत नगर का रूप दे दिया, उनके परिश्रम के मूल्य को, खून पसीना

एक बार देने को क्या मोटर गाड़ियों में सुख से सैर सपाटे करने वाला कठिन आंक सकता है ? संसार का ऐसा ही विचित्र हाल है । कठोर तपस्या कर दूसरों के लिए मार्ग-अन्वेषण करने वाले, भावी प्रजा के हित के लिए अपने आप को मिटा देने वाले और समग्र संसार के लिए मिटा देने वाले, समग्र संसार के लिए बलिवेदी पर हंसते २ अपने प्राण त्याग देने वालों के लिए चिर-कृतज्ञ बने रहने वाला कोई नहीं है। यही अवस्था सर्वत्र है किन्तु साहित्य क्षेत्र इससे अछूता रहा है यह एक आश्चर्यजनक बात है।

※ ※ ※

साहित्य को समझने के लिए सहृदय होना जरूरी है। जिन ज्ञानी सुलेखकों ने साहित्य की बाल्यावस्था में ही रुकावट रूप से आने वाले झाड़, झंखाड़ और कांटों को साफ किया, कंकड़ पत्थरों को बीना और अपने अमूल्य स्वास्थ्य की

परवाह न करके इसके प्रशस्त मार्ग को बनाया — क्या वे प्रशंसा के पात्र नहीं हैं, या कुछ कम हैं ?

आधुनिक युग में हिन्दी साहित्य को जो प्रशस्त और साफ सुथरा मार्ग उपलब्ध है... इतना गौरवास्पद स्थान प्राप्त ~~उपलब्ध~~ हुआ है, उसके मूलभूत कारण पर विचार करने आज हम आ रहे हैं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी एक प्रकार से वर्तमान हिन्दी साहित्य के जन्मदाता हैं। उन्होंने अनेक प्रकार से वर्तमान हिन्दी साहित्य की विस्तार वृद्धि की है। उन्हीं के सतत कार्यरत होने के परिणामस्वरूप, अनेक साहित्यिक विभागों का शिलान्यास है। आजकल जो हिन्दी में - क्या पद्य और क्या गद्य सभी क्षेत्रों में नवीन जीवन सा स्फुरित होता दीख पड़ता है उसका श्रेय इसी महारथी को है।

उस समय प्रचलित हिन्दी गद्य के विचित्र स्वरूप का इन्हीं की लेखनी से आविर्भाव हुआ है। साधारणतया इनकी तीन शैलियां हैं।

प्रथमतः उन्होंने एक प्रकार के मिश्रित गद्य का आविष्कार किया है जिसमें हिन्दी उर्दू-संस्कृत अंग्रेजी-अरबी-फारसी और सभी भाषाओं के शब्द समाविष्ट हैं। शुद्ध हिन्दी के शब्दों की भरमार करने का प्रयत्न नहीं किया जाता। भाषा को क्लिष्ट और जटिल बनाकर श्रोता और पाठकों को सिर खुजलाने का अवसर नहीं दिया जाता। अपितु भाषा ऐसी सरल सीधी और सुबोध होती है कि प्राकृतजनों को भी अर्थ-बोध करने के लिए कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता।

द्वितीय, उनकी भाषा में व्यंग्य और हास्य की प्रधानता रहती है। इसके लिए आप से सम्पादित सरस्वती की फाइलें देखी जा सकती हैं।

इस शैली में भाषा हिन्दी उर्दू मिश्रित रहती है। फारसी की बू इसमें आती अवश्य है किन्तु इनके बाजू में शाब्दिक अस्त्र शस्त्र ऐसे रहते हैं कि वे अपना लक्ष्य नहीं चूक सकते।

परिणामतः पाठक व्यंग्य और हास्य से त्रस्त प्रतीत होते हैं।

प्रतिपाद्य विषय के गूढ़ और रहस्य-मय होने पर स्वभावतः इनकी भाषा कुछ क्लिष्ट और परिष्कृत हो जाती है। ऊपर संस्कृत का आवरण आवृत हो जाता है किन्तु निरे संस्कृतज्ञों की तरह उनकी भाषा में दुरूहता और दुर्बोधता नहीं आने पाती, अपितु भाषा का प्रवाह नैसर्गिक रहता है और उसपर उनके व्यक्तित्व की मुहर तो लगी होती है।

इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने सम्पादक काल में भाषा और व्याकरण नाम से एकाध लेख लिखकर लेखकों के लिए एक साफ-सुथरा प्रशस्त मार्ग तैयार किया था। मार्ग को निष्कण्टक देखकर लेखकों को भी उसपर निर्भय होकर विचरने का साहस हुआ। वैसे तो अनेक वर्तमान कवियों और लेखकों को साहित्य में लाने का श्रेय इनको ही है।

मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवि और गंगाप्रसाद शुक्ल, सनेही जैसे लेखकों ने आपकी अध्यक्षता में ही तो यश पाया। इसी प्रकार न जाने कितने ही लेखकों ने सरस्वती के द्वारा काव्य जगत में प्रकाश पाया। आजकल उनके नाम गिनाने का समय कहाँ।

पहले पहल वर्तमान सब लेखकों की कृतियाँ द्विवेदी जी के हाथ से संशोधित एवं परिमार्जित होकर सरस्वती में छपती थीं (यद्यपि आप अपने को कवि न मानते थे किन्तु सरस्वती में छपने के लिए प्रस्तुत कविताओं में रद्दोबदल घटाव बढ़ाव, अवश्य कर दिया करते थे। इस प्रकार अनेक कवियों और लेखकों पर आपके कवित्व की छाप लगी और अनेक पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव भी पड़ा। उस समय की सरस्वती और आज की सरस्वती में आकाश पाताल का अन्तर है। आज तो अनेक ऐसी पत्रिकाएँ हैं जो इससे पढ़ाई सकती हैं किन्तु

उन दिनों एक भी ऐसी पत्रिका न थी जो इससे लोहा ले सकती।

सम्पादकों के लिए तो द्विवेदी जी आदर्श थे ही और हैं भी किन्तु साथ ही में एक बात और। वह यह कि उन्होंने अपने सम्पादकीय जीवन में कभी भी किसी को पक्षपात देने में प्रमाद नहीं किया। कोई बात और इधर न करवाने के लिए नाक भौं सिकोड़ने वाले लेखकों का लेख भी आवश्यक ही संशोधन जाया करते थे। परन्तु आपके लिए कार्यपरायणता की ही तो उदाहरण हैं।

द्विवेदी जी ने अनेक पुस्तकों के बढ़िया से बढ़िया और सुन्दर से सुन्दर अनुवाद किए। अनेक विद्वत्ता पूर्ण मनोरञ्जक एवं रोचक लेख लिखे, कविता बनाई अर्थात् यथाशक्ति जैसे भी बन पड़ा, हिन्दी साहित्य को सरसब्ज करने का यत्न किया। वस्तुतः यदि वर्तमान युग को हम द्विवेदी युग का नाम दे दें तो कोई

अर्पित न होगी। आपने जी जान से, तन, मन, और धन से हिन्दी साहित्य की विकास, वृद्धि करने का प्रयास किया। पर सब होते हुए भी आप मौलिक कृति कोई न कर सके — मनुष्य सेवा एक प्रकार से ऐसी ही कर सकता है।

यही दृष्टि का विकास है कि —

आपने, अपने जीवनकाल में ही जिस सेवा का बीज बोया था आज उसे फलता और पल्लवित होता हुआ भी देख लिया। आगे क्या कहूँ।

एक कहानी

आज से कुछ ही सौ वर्ष पहले की बात है जब भारतवर्ष को सोने की चिड़िया कहा जाता था। सर्वत्र सुख-शान्ति विद्या-वैभव का राज्य था। यद्यपि देश का राजनैतिक सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया था तथापि सांस्कृतिक एकता अटूट थी। सैद्धान्तिक मतभेद होते हुए भी धार्मिक सहिष्णुता अपने उज्ज्वलतम रूप में थी। विद्याविनोद में वे पूर्णतत्पर थे। "स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्" का कर्णकटु स्वर कानों में नहीं पड़ा था। पारिवारिक प्रेम की जड़ अभी हिलाये नहीं हिली थी। अन्तों प्रत्यन्तो से घनिष्ठ सम्बन्ध था। जहाँ वाणिज्य-व्यवसाय

देश के एकीकरण का कारण था वहाँ ज्ञान यात्राएं भी (क्योंकि अन्य देशों के छात्र बहुत बड़ी संख्या में किया करते थे) एक बड़ा हेतु थी। धर्म-ज्ञान-विज्ञान सुख सम्पत्ति सभी दृष्टियों से भारत आगे बढ़ा हुआ था। उद्यान-खोतान काशगर-गान्धार-कन्धार आदि पश्चिमोत्तरीय देशों से ही नहीं अपितु बृहत्तर भारत के अंगभूत सुवर्णद्वीप यवद्वीप-सुमात्रा-चम्पा-आदि के राजकुमार भी भारतीय शिक्षा केन्द्रों में आया करते थे। वर्तमान अफगानिस्तान जहाँ आज पश्तो भाषा भाषी पठानों का बोलबाला है एक महत्वशाली भारतीय प्रत्यन्त था। वहाँ के राजपरिवार के लोग तक्षशिला के लोक-विश्रुत विद्यालय में अध्ययनार्थ आते थे। और यहाँ से उपाधि ले स्वदेश में जा अक्षयकीर्ति के साथ साथ अतुल ऐश्वर्य पाते थे। इसी समय उद्यानदेश का राजकुमार 'सत्य' को इसी शिक्षा केन्द्र में वैद्यक

तथा अर्थशास्त्र की शिक्षा के लिए आया हुआ था। उधर पूर्वोत्तर प्रदेशस्थ 'उदन्तपुरी का विद्यापीठ' अपनी न्याय तथा बौद्ध साहित्य की महत्ता के लिए ख्याति पा चुका था। वहाँ पर सुवर्णद्वीप का ~~सु~~ युवराज 'प्रकाश' भी न्याय तथा राजनीति की उच्च शिक्षा के अध्ययनार्थ आया हुआ था। तत्कालीन शिक्षालयों में अध्ययन की अवधि छः वर्ष थी। तदनन्तर उन्हें प्रमाण पत्र दे दिया जाता था और वे अपने जीवन यात्रा के प्रसंग पर निकल पड़ते थे। इन स्नातकों को राज्य की ओर से काम मिलता था। अत भावी जीवन के विषय में उन्हें किसी प्रकार का सन्देह न रहता था। पश्चात् शिक्षा का द्वितीय क्रम था। इसका केन्द्र ~~अवन्ती~~ 'अवन्ती' तथा 'नालन्दा' थे। यहाँ पर उपरिकथित विद्यामन्दिरों के लब्धप्रतिष्ठ स्नातक ही जो पण्डित कहाते थे उच्च-शिक्षा के लिए आते थे। भाग्यवश उद्यान देश के

राजकुमार 'सत्य' और सुवर्णद्वीप के युवराज 'प्रकाश' को भी अपने अभिभावकों की आज्ञा से स्वदेशीय अनेक महत्वाकांक्षी छात्रों की प्रतियोगिता में उच्च बनने के हेतु शिक्षा के केन्द्र में ही शरण मिली।

कुलपति आचार्य 'धर्मनाथ' ने दोनों विद्यार्थियों का स्वागत किया। समय क्या नहीं कर दिखाता। प्रकाश और सत्य दोनों को अपने दस दस साल के साथी छोड़ने पड़े। और वे परस्पर एक दूसरे की तरफ बढ़ते गए। कालान्तर में एक मन दो तन हो गए। धर्मपिता धर्मनाथ प्रतिवर्ष एक गवामयन सत्र का आयोजन किया करते थे। वैदिक साहित्य के विद्वान इससे भलीप्रकार परिचित हैं कि यज्ञ के लिए कितनी बड़ी सामग्री की आवश्यकता होती है। उन दिनों संस्थाओं के संचालक नृपतियों पर

एतद्विषयक व्यय डालना सर्वथा अनुचित समझ, ये कुलपति अपने भावि स्नातकों को लोक-शिक्षण तथा द्रव्यादि आनयन के निमित्त आर्यावर्त के विभिन्न प्रान्तों में भेजा करते थे। गुरुदक्षिणा का तत्कालीन स्वरूप भी यही था कि जो इस 'सरस्वती-यात्रा' में अधिकतम ज्ञानार्जन कर पाते थे उन्हें ही विश्वविद्यालय से उपाधि (महापण्डित महास्थविर आदि) दी जाती थी। यह परीक्षा भी कोई मामूली न थी। वानस्पतिक शास्त्र से लेकर आचार-शास्त्र पर्यन्त सम्पूर्ण विज्ञानों का क्रियात्मक ज्ञान (यथार्थस्वरूप) ज्ञात हो जाता था। इस प्रकार जब धर्म-गुरु ने यज्ञीय द्रव्य लाने का संकेत किया तो सत्य व प्रकाश ने भी अपनी यात्रा के सिलसिले में अपनी अपनी राजधानी में आने का पारस्परिक निमंत्रण दिया।

किन्तु पुरातन स्वदेश वास्तव्य साथियों के

षड्यन्त्र के फलस्वरूप दोनों में विरुद्ध भावनाओं ने प्रबलता पाली और उन्होंने मूक-करुण क्रन्दन द्वारा आत्मीयिक आमंत्रण को ठुकरा दिया पर दैव को कुछ और ही अभीष्ट था। "मन-चाहा नहि होत है हरि चाहा ही होत" अपनी आध्यात्मिक यात्रा समाप्ति पर ज्यों ही वे गुरु गृहाभिमुख हुए त्योंही मार्ग में 'प्रकाश' व 'सत्य' का साक्षात् हुआ। चिरकाल से बिछुड़े हुए स्नेहियों का पुनर्मिलन हुआ। वे चल पड़े बिना किसी मार्गदर्शक के। राह में सैकड़ों ने उन्हें स्मरण किया किन्तु आज वह तन्मो किसी अभिनव रागिनी को आला पने में लगी थी। अन्य वाद्यों की झंकार आज उन्हें अप्रिय लगती थी। वे चलते गए और बहुत दूर निकल गए। यह निर्विवाद है कि वियोग के बाद ही संयोग का आनन्द मिल सकता है। एक समृद्धिशाली था ।कभी किसी गरीब की निस्पन्द-मूक व्यथा पर

दृष्टिपात कर सकता है। क्या कोई टुकड़े का मोहताज, मानवीय प्रेम का भिखारी गगनचुम्बी उच्च अट्टालिकाओं में मनाये जाने वाले आनन्दोत्सवों की कल्पना भी कर सकता है। दोनों ही बातें असम्भव हैं। खैर इसप्रकार वे कुलपति धर्मनाथ के तपोवन में पहुंचे और गुरुपत्नी की चरणरज को मस्तकपर लगा "चिरायु होओ यह मैत्री शाश्वतिक हो यह आशीर्वाद पाया"।

गुरुकुल में पहुंचने भर की देर थी कि इधर 'सत्य' के तक्षशिला के सहपाठियों ने जो इस नये-पुराने - पूर्वपश्चिम के मेल को आर्य- अनार्य, देव-असुर (दस्यु) का संयोग कह अवाजें कसते थे 'सत्य' चूंकि आयु में कुछ छोटा था अनुभवी न था अतः इन चापलूस - षडयन्त्रकारी साथियों के झांसे में आगया। चंगुल में फंस गया। अगले ही दिन से दोनों में

उपेक्षा, उदासीनता, शर्म, प्रतिद्वन्दिता के भाव घर कर गए। दोनों एक दूसरे से लजाने लगे आने जाने की दिशा ही बदल गई। विचारधारा में एक अचिन्तित-अनकल्पित परिवर्तन आने लगा।

X * X X X

परन्तु यदि संसार में पापात्मा ही अधिक हैं तो क्या पुण्यात्मा बिल्कुल ही नहीं हैं। यह कहना मिथ्या है। अबू बिन एडम के देवता यहाँ फिर प्रकट हुए और उन्होंने प्रकाश को मोहान्धकार से हटा अपना दिव्य आलोक दिया। निस्सहाय भक्त के लिए देवता ने स्वयं दौत्य किया। वे कालिदास के अवन्ती स्थित यक्ष की भाँति प्रकाश के लिए होते हुए भी अलकापुरी में विहार करने वाले श्याम मेघ बन गए। परन्तु 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि' के अनुसार रावण पर विभीषण के -

उपदेशात्मक नीति वाक्य कुछ असर डाल सके थे। वही बात यहाँ हुई। अन्ततोगत्वा प्रकाश ने आत्मसम्मान की बलि दे यथार्थता जाननी चाही। वस्तु स्थिति परिज्ञान के हेतु आत्म-सम्मान का बलि चढ़ा दिया। वे दोनो मिले और दिल खोल कर मिले। परन्तु आवरण ने उनका पीछा न छोड़ा। दूषित वातावरण समय समय पर उन्हे उत्तेजित व समुल्लसित करता रहा।

अकस्मात् एक दिन 'सत्य' प्रकाश के पर्ण कुटीर मे आया और अपने जीवन की सुखदाशा प्रकट करने लगा। प्रेम एक ऐसी वस्तु है कि उसमे कभी शिथिलता नहीं आती। बशर्ते कि वह सच्चा हो। भौतिक होते हुए भी आदर्श की तरफ लेजाने वाला हो। तब वह कभी पतन का हेतु न बनकर सदा उच्चता की ओर ले जायगा। ऊर्ध्वगति वाला होगा। इस मे किसी प्रकार के भय और आशंका की आशा नहीं। परिणामतः दोनो ने बहुत दिनो बाद

आज फिर प्रेमोपहार भेंट किए। और वे अपने पथ को निष्कण्टक बनाने की चेष्टा करने लगे।

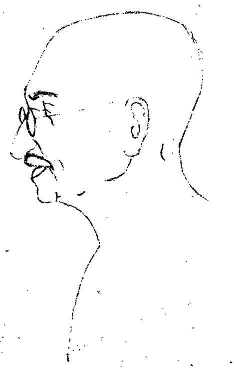
समय ने बहुत से उलट फेर देखे हैं उसने मानव जीवन के पवित्रतम नाना दृश्य भी चित्रपट पर अंकित किए हैं। समाज की आंखो के आगे रखे हैं। अब तक उभयपार्श्ववर्ति नेत्रों में फर्क आ चुका था। कोई भी किसी के प्रति झुकना न चाहता था। अत ईस रानी सन्देहशील ज्ञान प्रकाश ने निश्चिन्तता के हेतु प्रकृति माता की आराधना - उपासना अर्चना प्रारम्भ की। उसने भी निराश्रितो की एकमात्र सहायिका होने के नाते अपने पुत्र का स्वागत गान द्वारा अभिनन्दन किया। अर्घ्य दे नैवेद्य चढ़ाया और परम शान्ति को प्राप्त किया। लेकिन इतने पर भी यदि किसी भाग्यहीन को शान्ति व सुख का अनुभव न हो तो उस मे दोष किस का। हृदय

राजहंस

कलिका के कुड्मलों पर बार बरिक पवन कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकती तो उसका किसी को दोष देना व्यर्थ है। क्योंकि —

विकसति न वसन्ते मालती कोऽत्र हेतुः ।

राजहंस



[illegible]

महात्मा गांधी

हे विश्ववन्द्य ! हे महामान्य ! हो देश प्राण तुम ही गांधी,
विश्वानुरक्त निस्पृह उदार,
निर्लेप निरंजन तुम गांधी ।

चिर निन्दित जाति बहिष्कृत थे,
अस्पृश्य और अन्त्यज अछूत,
हरिजन कह अपनाये तुमने
कर आप गेहोचित शिखर पूत ।

यह विरति विनिश्रित विपुल क्षोभ,
दुःख दावानल का उचित होम,
युग का अभिशाप हेय निसर्ग,
संत्रस्त दीनजन विक्षुब्ध लोक ।
शुभ सत्याग्रह संदेश सुना
शासन का काँपा तीव्र लोम,
करते उच्छेदन से निशिदिन
बन प्रखर भानु हे सौम्यसोम ।

यह चक्र सुदर्शन धारी तुम
प्रिय मोहक मोहन हो ललाम ।

तुम सत्य अहिंसा व्रतधारी
हो पूज्य तुम्हें शतशः प्रणाम

शार्ङ्गदेव

निःशंक शार्ङ्गदेव के समय मार्गी देशीनाम से संगीत में दो पद्धतियां प्रचलित थी। इन में से मार्गी पुरानी थी जिस का लगभग उस समय तक ह्रास हो चुका था, और देशी पद्धति नवीन थी इसी का उस समय प्रचार था। इन का काल था १३वीं सदी का उत्तरार्द्ध और लगभग १४वीं सदी का प्रारम्भ। इन के ग्रन्थ 'संगीत रत्नाकर' के पढ़ने के बाद मालूम होता है कि ये नवी पद्धति के साथ पुरानी पद्धति का मेल बैठाने का प्रयत्न कर रहे थे। इन्हों ने अपने ग्रन्थ में न केवल देशी पद्धति पर विचार किया अपितु उस पुरानी पद्धति को पुनः जीवन देने का प्रयत्न किया। उस समय के लिये

यह बात अच्छी रही या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता, पर जिस पद्धति को उन्हों ने जीवन देने का प्रयत्न किया, वह जीवित न रह सकी और वर्तमान समय तक यह पद्धति लुप्त ही हो गई है।

इस काल में आजकल की ख्याल पद्धति न थी। इस समय ध्रुपद का ही प्रचार था। कई लोग ध्रुपद का काल आज से १००० वर्ष पुराना बताते हैं पर इतना तो सही है कि शार्ङ्गदेव के समय भी यह प्रणाली प्रचलित थी। यही ध्रुपद प्रणाली तानसेन के समय तक तथा उस के बाद भी बहुत समय तक सुरक्षित रही। इस ध्रुपद प्रणाली को सुरक्षित रखने में तानसेन वंश का बहुत बड़ा हाथ था। तानसेन के गुरु श्री स्वामी हरिदास जी इसी ध्रुपद प्रणाली के अद्वितीय आचार्य थे। यही काल अर्थात् १६ वीं शताब्दी इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है, इसी काल में अकबर जैसे सम्राट् हुए तथा श्री स्वामी हरिदास जैसे ध्रुपद प्रणाली

के आचार्य हुए । इन्हों ने अपनी विद्या को सुरक्षित अपने शिष्यों को दिया, इन के शिष्य लोक प्रसिद्ध तानसेन और बैजू बावरा थे । साथ ही इसी १६ वीं शताब्दी में ही मृदङ्ग तबले के रूप में आई, यद्यपि उस समय तबले का इतना प्रचार न हुआ था पर बाद में उस का इतना प्रचार हुआ कि आज मृदङ्ग का नाम भी साधारण आदमी नहीं जानता । वह जानता है केवल तबले को । भूलना न होगा कि इस तबले के आविष्कार से ध्रुपद प्रणाली को अत्यधिक नुकसान हुआ क्योंकि ध्रुपद का जोड़ तो मृदङ्ग की आड़ी, कुआड़ी और परन आदि के साथ बैठता है । मृदङ्ग के प्रचार की कमी के साथ २ ध्रुपद प्रणाली भी समाप्त होती चली गई। वर्तमान समय में नाममात्र को बच रही है।

औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद और सन् १८५७ के गदर के बीच ख्याल प्रणाली आविष्कृत हुई । इस के आविष्कार का ठीक २ समय बताना कठिन है । इस

के आविष्कार के विषय में कहा जाता है कि इसे सदारंग नाम के मुसलमान ने, जो कि तानसेन के दौहित्र वंश में से थे, सब से पहले गाया था। पर इन्होंने स्वयं उस का प्रचार न कर इस पद्धति को सब से पूर्व दो शिष्य बालकों को सिखाया, इन्हीं शिष्य बालकों से ही इस का प्रचार हुओं (उस समय की मुसलमान जाति) में हुआ। इस के बाद नहीं कह सकते किसने प्रथम टप्पे और ध्रुपद के मेल से ख्याल पद्धति का आविष्कार किया। यही पद्धति इस समय अत्यधिक प्रचलित है। इसके प्रसिद्ध गायक बीच के काल में ममद खां रीवां वाले तथा हस्सू खां हद्दू खां ग्वालियर वाले हुए। इस के साथ ही कालान्तर से ठुमरी आदि आविष्कृत हुईं। इस में ध्रुपद, टप्पा और ख्याल तीनों की खिचड़ी कर दी गई।

हमारे आज के संगीत पर मुसलमानों ने अत्यधिक छाप डाली है। १६१० की एक प्रसिद्ध

'राग विबोध' सोमनाथ कृत मिलती है, उस में तत्कालीन मुसलमानों द्वारा प्रचारित हुसेनी, शिल्लाफ, मुसाली आदि कई रागों का परिचय दिया गया है। इसी समय के 'अनूप संगीत रत्नाकर' पं० भावभट्ट कृत ग्रन्थ में करनाट, नायकी, बागेश्वरी, अड़ाना, शहाना कान्हड़ी आदि कई नई जातियों के रागों का परिचय मिलता है। तथा ये इन्हीं पुस्तकों में मुसलमानों द्वारा दी गई नई तानों का उल्लेख है। जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है ख्याल का आविष्कार भी इन्हीं मुसलमानों द्वारा हुआ तथा तबले का आविष्कार भी इन्हों ने किया। साथ ही सितार आदि अन्य बाद्यों का भी इस समय आविष्कार हुआ, उस में भी मुसलमानों का हाथ था। लगभग अकबर के समय से संगीत मुसलमानों के हाथ में आ गया था। इन्होंने उस भारतीय संगीत को बहुत कुछ अपने साथ लाई संस्कृति से रंगा। यही मुस्लिम संस्कृति से रंगा संगीत ही उत्तर भारत

में आज २०वीं शताब्दी में प्रचलित है।

विक्रमी संवत की २०वीं शताब्दी में दो अन्य विभूतियां पैदा हुई जिन्हों ने संगीत के क्षेत्र में बहुत काम किया। वे विभूतियां थीं- श्री विष्णु नारायण भातखण्डे और श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर। संगीत को उच्च श्रेणी में प्रचार करने का असाधारण प्रयत्न किया श्री पं. विष्णु दिगम्बर ने। इस से पहले संगीत निकृष्ट श्रेणी के लोगों के लिये समझा जाता था। पर जो काम १३वीं शताब्दी में श्री निःशंक शार्ङ्गदेव ने किया उस काम को फिर यदि किसी ने किया तो वह थे श्री पं. विष्णु नारायण भातखण्डे। इन्हों ने प्राचीन पद्धति के साथ नवीन पद्धति का मेल बैठाने के लिये अध्ययन शुरू किया। दोनों पद्धतियों की आलोचना की तथा इसी की खोज के लिये सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। इसी भ्रमण में उन्हें जब सुने गाने को मिले

की आवश्यकता अनुभव हुई तो उन्हों ने नवीन पद्धति की स्वरलिपि का आविष्कार किया। यह आविष्कार साधारण चीज़ नहीं है उस के लिये तो आने वाली सदियां तक इन के प्रति कृतज्ञ रहेंगी। अब तक जिस राग को बिना गुरु के सीखने के नहीं हो सकता था उसे उन्हों ने लिख कर सीखने का मौका दिया। इनकी अमर कृति है 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति'। इसी ग्रन्थ के कारण लोग इन्हें शार्ङ्गदेव कहने लगे थे। इन की मृत्यु से संगीत का अन्वेषण जो इन्हों ने शुरू किया था बीच में ही अपूर्ण रह गया है।

आज कल के संगीत में ध्रुपद, टप्पा, ख्याल और ठुमरी ये सभी प्रचलित हैं। ख्याल ने तो इस समय लोगों के हृदय में अद्वितीय स्थान बना लिया है। ठुमरी को भी लोगों ने कम नहीं अपनाया है। पंजाब में गज़लें बहुत पसन्द की जाती हैं। नवाबों के आश्रय में

पली ठुमरी ने अपना स्थान लखनऊ और बनारस में बनाया है। राजा, महाराजाओं के दरबारों में ख्याल पद्धति ने आश्रय पाया और अब ~~सर्व साधारण~~ सर्व साधारण भी इसे अपनाने लगे हैं। ध्रुपद का इस समय न तो अधिक प्रचार है न ही इस के सुनने वाले अधिक हैं। इस के प्रधान थे ध्रुपद के गाने वाले स्व. नासिरुद्दीन खां। वैसे ये ध्रुपद की गायकी करते थे, पर इन का ढंग संगीत सम्मेलनों में प्रायः नहीं जमा; इस का कारण व्याख्या नहीं कर सकते; पर इस से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि लोगों ने ध्रुपद प्रणाली को नापसन्द किया है। अभी भी इस पद्धति के कुछ गाने वाले हैं पर सर्व साधारण में से यह पद्धति उठती हुई मालूम होती है।

उमर खय्याम

मुझे आज उमरखय्याम के ऊपर कुछ लिखने को कहा गया है। फ़ारसी का यह लोक-विख्यात कवि अपनी श्रेष्ठ-रचना 'रूबाइयात उमर-खय्याम' के कारण संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों में गिना जाता है। कहाजाता है कि वह ११२३ ई. सन् में मरा। उसका कोई इतिहास प्राप्त नहीं है। वह अपने समय में सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ रहा था और बाद में वह वेध-शाला में ज्योतिषी के रूप में रहा। उसकी गणित की पुस्तकें अत्यन्त प्रामाणिक हैं। कवि अनीश्वर-वादी के रूप में जनता के सामने आता है। कुछ लोग उमरखय्याम की फ्रांस के वौल्टेयर से तुलना करते हुए उसे पूर्व का वौल्टेयर कहते हैं। वह विख्यात प्रतिभाशाली वौल्टेयर जिसने फ्रांस की क्रान्ति में बहुत

बड़ा हिस्सा लिया था। निस्सन्देह इसकी उपमा पाने लायक था। वह लिखते हुए गज़ब करता था और गणितज्ञ भी था। पर तुलना यहां पर समाप्त हो जाती है। जब हम काव्यक्षेत्र में उतरते हैं तो वाल्टेयर बहुत पिछड़ जाता है। उसने ऐसी कोई चीज़ नहीं लिखी जैसी कि उमर खय्याम की रुबाइयां हैं। इन में से अधिकांश रुबाइयां अंगूरी शराब की प्रशंसा में हैं।

मानव-जीवन में कितने ही समय आते हैं जब आदमी का मस्तिष्क दुःखों से व्याकुल होता है, जो दुःख शारीरिक यन्त्रणाओं से कहीं कड़े होते हैं। जिस समय आदमी छटपटाता है, पर दुःख को किसी से नहीं कह सकता। ऐसे भी समय आते हैं। बहुत से ऐसे अवसरों पर आत्महत्या कर लेते हैं। पर ऐसे समय मदिरा मानवता को शान्ति देने में सबसे आगे रहती है। प्याले मदिरा से भरे हुए होठों पर जाकर मस्तिष्क को वह शान्ति देते हैं जोकि भीषण कष्टों के बाद

स्वर्गीय-सुखों की अस्पष्ट छाया प्रतीत होती है। आदमी अपने को भूल जाता है। आदमी अपने दुःखों को भूल जाता है। उससे बड़ा सुख कौन सा है। मदिरा से अधिक सुन्दर वस्तु कौन सी है। निराश, दुःखित मानव मस्तिष्क को फूल सान्त्वना नहीं दे सकते, पानी दुःखों को धो नहीं सकता, सारी प्राकृतिक सुन्दरता उस समय अपने को असमर्थ पाती है उद्विग्न-चित्त को शान्त करने में। शरीरिक सुख उसे शान्त नहीं कर सकते। मदिरा केवल मदिरा वह दिव्य पेय ही शान्ति दे सकता है दुःख को भूल सकता है। उसकी ओर कवि का ध्यान बहुत रहा है। पर उसने और सांसारिक सुखों का भी पर्याप्त गुण-गान किया है

कवि संभवतः पुस्तक के आरम्भ में सोकर बिस्तर से उठ रहा है। उसकी प्रेयसी तो सदा साथ रहती है, उसे जब चाहे सम्बोधन कर लेता है। उसके अभिमुख होकर वह कहता है—

उषा ने फेंका रवि बाण निशा-भाजन में जल्दी आग

प्रिये! देखो या यह संकेत रहे कैसे तारकदल भाग॥

शायद उसके बाद भी वह लेटी रही तो कबाई की अगली लाइनों में उसने कहा —

और उधर देखो तो प्राण अहेरी ने फूलक के लाल।
फंसाली सुलतानी मीनार बिछा कैसा किरणों का जाल॥

कवि कविता में बह चला।

उषा ने अंगड़ाई लेकर हास्य गगन की ओर पसार दिए तब उसे स्वप्न में मदिरालय में मदिरा पीने का आह्वान सुनाई दिया। सोकर उठने से पहले ही उसे मदिरा याद आ गई। इतनी देर तक नींद ने मनुष्य को बहलाया। पर जब वह दौड़ने लगी तो मानव-बच्चे की तरह दूसरी सखी के लिए चिल्ला पड़ा। मदिरालय के द्वार पर मुसाफिरों ने शोर मचा दिया। उन्हें विश्वास नहीं कि एक बार जीवन-नौका उस पार जाकर लौट भी सकती है। कवि पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं करता। सम्भवतः नया वर्ष शुरू हो चुका है। कवि अत्यन्त उदार-वृत्ति होने के कारण

मनीषी-लोगों की मधु-वृत्ति की ओर भी इशारा करता है जिसमें वह मूसा के जलते हाथ को नई तरुआभा और ईसा के उच्छ्वास को नवल-समीर से उपमा देता है। आगे इतिहास का छोटा सा हवाला देते हुए कवि मानव को अस्थिर बताते हुए कहता है 'अजम' के उद्यान के गुलाब नष्ट हो चुके हैं जमशेद का सात-चक्र वाला प्याला लोगों ने भुला दिया है पर बाग तो अब भी लहराते हैं और प्याला अब भी मदिरा-पान करता ही है। आगे भी कवि इशारा करता है कि भले ही कोई शख्स प्रसिद्ध कलाकार हो या न हो पर संस्कृति की स्थिर कला उस पर आश्रित नहीं है वह तो रहेगी ही। भले ही दाऊद मर गया है पर बुलबुल तो अब भी बोलती ही है। वह क्या बोलती है उसे कवि को सुनाई पड़ता है 'सुरापी मधुपी मदिरा-लाल; जिसे पीकर हों जायें शीघ्र गुलाबी उसके पीले गाल।' लगता है कि कवि केवल इसीलिए मदिरा का प्रशंसक है क्योंकि वह उसके

पश्चात्ताप और विषादों रख करके उड़ा देती है। आगे इसी रुबाई में प्रेयसी को सम्बोधन करके कहता है कि काल-पक्षी अपने दिन और रात के पंखों को खोले उड़ा जा रहा है क्योंकि उसने तो निश्चित पथ पार करना ही है। अतः देर न करो और मुझे मदिरा पिला दो।

आगे - जीवन की उषा जग-उपवन में पैर रखती है कलियां खिल जाती हैं फूल गिर जाते हैं। जो आज हंसाता है वही बसन्त हमारे महापुरुषों को ले भी जाता है। आगे कवि भूत-विस्मृतिवाद को लेता है। Let the dead past bury its dead. कैखुसरु और कैकुबाद को संसार भूल गया है। इसी से वह भी उन्हें याद करना मूर्खता समझता है। सम्भवतः किसी शार्दूल में बैठकर वह कहता है इस प्रेमराज्य में - यदि महमूद भी आ जाय तो उसे आना पड़ेगा हम दोनों को देखकर। आगे एक नन्दनवन की सुन्दर कल्पना है -

→

राजहंस

घनी सिर पर तरुवर की डाल
हरी पातों के नीचे घास।
बगल में मधु-मदिरा का पात्र-
सामने रोटी का दो ग्रास॥
सरस कविता की पुस्तक हाथ
और सबके ऊपर तुम प्राण।
गा रही छेड़ सुरीली तान
मुझे अब मरुनन्दन उद्यान॥

भूलोक और स्वर्गलोक को चुनने के लिए वह सुन्दर उपाय बताता है—

दूर का छोड़ प्रलोभन मोह
करो जो पास उसी का मोल।
सुहाने लगते हैं प्रायः
ओ यह दूर दूर के ढोल॥

→ मानव को कितनी बार निराश होना पड़ता है। पर कवि सम्भवतः निराशावादी है। उसे हास्यास्पद प्रतीत होता है कि मानव किसी उज्ज्वल आशा को देखे। क्योंकि उसको निश्चित शरण हो जाता है।

धनी को कटाक्ष करते हुए कवि कहता है कि दानी और कंजूस दोनों ने ही स्वर्ण लुटाया और समेटा पर मरने के बाद कोई स्वर्ण न हो पाया कि लोग उखाड़ कर देखें तो। उमर खय्याम की दृष्टि में जगती सराय है जिसके दो द्वार दिन-रात हैं। एक को ऊषा और दूसरे को संध्या खोलती है। सभी यह मान है। जमशेदी दरबार म्लान हो गया है। वहाँ अब कुत्ते भौंकते हैं। बादशाह बहराम अपनी कब्र में सो रहा है। उसे भी शराब से ज्वाला हो तो पड़ा। गड़े अपनी पत्तियों के खून से गुलाब लाल होते हैं और कामिनी कुन्तल ही आगे जाकर वेलिरूप में आ जाते हैं। अगली रुबाई में कवि की सहृदयता पूर्ण रूप में जागृत हो जाती है। लगता है कि प्रेयसी के साथ वह किसी नहर के कोमल घास वाले किनारे पर घूम रहा है।

वह कहता है —

ओर यह कितने कोमल-पात
झुकाते से अपने अम्लान।
ढक रहे जो सरिता का कूल
बिछाते हम तुम जिस पर प्राण।

धरो धीरे से इस पर पांव कौन जाने हो सकता प्राण।
किन्हीं मृदु अधरों को ही चूम उगे हों ये पौधे अनजान॥

आगे कवि कल पर अविश्वास दिखाते हुए कहता है कि मुझे आज मदिरा पिला दो जिससे मृत के दुख और भावी चिन्ताएँ दूर हो जांय।

आदमी, मानवता प्रतिपल कितने कष्टों से पीड़ित हो रही है। यदि हम समग्र मानवता को एक रूप में कल्पना करें तो हम देखेंगे कि प्रतिक्षण उसका कोई न कोई प्रिय सदस्य मर ही रहा है। कितना दुखद होता है अपने एक सच्चे प्रेमी को भेजदेना वहां, जहां से कि कोई लौटता नहीं। उमरखय्याम भी सम्भवत किसी प्रिय सम्बन्धी के अवसान पर रोते हुए कहता है कि वे सुन्दरतम जिन्हें हम प्यार करते थे वे कालकर्म के कितने शीघ्र शिकार हो गए हैं। अभी तो वे प्याले भी नहीं पी पाए थे कि उनका जीवन मद सूख गया और वे अपने आगामों की भूख लिए अनन्त विश्राम करने चल दिए। फिर कहता है कि हमने भी वहीं जाना है पर अभी जीवन शेष है क्यों न आनन्द करलें।

फिर स्वर्ग में गड़ने के बाद तो सुरा और संगीत नहीं मिलते।

यहां इस संसार में आनन्द करें या यहां कष्ट सह कर परलोक की तैयारी करें। यह एक काफ़ी पेचीदी उलझन है पर इसमें भी एक सीधी राह ख़य्याम दिखता है कि मत करो मत। एक काम करो, और पहले वह कहता है कि "करो जो पास उसी का मोल"। जो कल विद्वान थे वे आज मूर्खों की ही तरह कब्रों में सो रहे हैं। तुम समझते हो कि पुनर्जन्म होगा? कभी नहीं- जो फूल आज सूख गया है वह कभी नहीं फूल सकेगा।

"मैंने भी तर्क किया है सीखा है"- ख़य्याम कहता है - "पर मैंने देखा युक्तियां एक भूल-भुलैयां हैं" जिनका अन्त प्रारम्भ ही है"। आगे एक कल्पित विधाता की ओर इशारा करके कहता है कि हमें बिना पूछे इस ओर फेंक देता है बिना पूछे उस ओर खींच लेता है। कितना अन्याय है। मुझे मदिरा पिलाओ जिससे जन्म, मरण और अन्यायी

विधाता सभी को भूल जाऊँ। काल दरवाज़े बन्द किए बैठा था जिसे उठाकर मैं खोल न सका, नियति का घूंघट ही भी मैं खोल न पाया हूँ। कुछ 'मैं तू' बात सुनाई दी पर थोड़ी देर में वह छिप गई। एक कल विश्वपाश से दूर है दूसरा जगफंद काट चुका है। उसका चिन्तन मत करो यदि 'आज' आराम से बीत रहा है।

किसी लौह-लेखनी भाल शिला पर कुछ लिख देती है फिर घूमकर देखती भी नहीं कि लिखा क्या है। उस लेखे में से भक्ति और आंसू से एक भी अक्षर कम नहीं होने का। आगे कहता है–

मलिन मही की दे दी देह न फिर यह कैसे करती पाप।
अदन के उपवन के ही साथ रचा तूने पा का सांप॥
ओ रे जो सब तेरे पाप कलंकित जिनसे मानव भाल।
क्षमा कर मानव के अपराध क्षमा अपनी पा ले तत्काल॥

सृष्टिकर्ता पर इससे सुन्दर आरोप सम्भवतः और कहीं न मिले।

आगे आठ रुबाइयाँ हैं जिनका विवेचन

हम अन्त में कहेंगे।

उसके आगे कवि की लेखनी चरम सीमा पर आती है। पुस्तक का अन्त अब दूर नहीं है। वह कहता है कि मरते समय मेरे होंठों से सींच देना। मरने के बाद मुझे मदिरा से स्नान कराना। मुझे अंगूर के बाग के पास लिटा देना (गाड़ देना)। मेरा राख सब जगह सौरभ-पाश बिखा देगी। फिर देखूंगा कि ढोंगी शेख किस तरह उनको विश्वास करते नहीं आते।

आगे —

किया जिनको चिर दिन से प्यार
उन्होंने ही ऐसा व्यवहार
किया जिससे सारा संसार
मुझे कहता कंचन से
दिया छिछले प्याले में बोर
उन्होंने मेरा गौरव - मान
और दी ख्याति प्रतिष्ठा बेच
उन्होंने लेकर बस यह गान
कवि करुणा - रस में आग

बरसा रहा है। पाठक रो सकते हैं पर हृदय में उनके

प्रति क्रुद्ध हुए बिना नहीं रह सकते जिन्होंने वह निन्द्य-कार्य किया। इस वस्तु को वे ही जान पाएँगे जिन्होंने कभी अनुभव किया हो। वे ही जिनको हम प्यार करते हैं तो हृदय पर कैसा वज्राघात होता है उसकी भुक्त-भोगी ही कल्पना कर सकता है। वे, जिनके प्रति विरोध में हम कुछ न कहने या करने के लिए प्रणबद्ध हैं किस निर्दयता से अत्याचार कर सकते हैं उसको कवि का प्रत्येक शब्द स्पष्ट कर रहा है। आदमी कई बार सोचता है कि मैं यह करूँगा वह करूँ - बड़े २ नियम बनाता है। पर कहां वे पालित होते हैं। टूट जाते हैं। साधारण आदमी को ध्यान भी नहीं रहता। पर कवि कहता है - "मैंने शपथ लेकर बड़े पश्चात्ताप किये थे"। पर वह शपथ तो मैंने जोश में ली थी। जब वसन्त आया तो मेरे व्रत के तार उसके साथ ही टूट गए"। कवि अपने को सान्त्वना दे रहा है।

आगे कवि कहता है —:

हाय प्रेयसि मिल हम तुम साथ नियति के रच कोई षडयन्त्र

पकड़ सकते यदि सम्पूर्ण जगत् का दुखसंकट

न क्या हम करके चकनाचूर मिटाते उसका सत्वसहल

बनाते एक नया संसार हृदय के स्वप्नों के अनुकूल

वर्तमान संसार के दुःखों से पीड़ित व्यक्ति ही ऐसा कह सकता है। और यह ध्रुव सत्य है कि तत्व-ज्ञान अत्यन्त गम्भीर वेदनापूर्ण अनुभवों से पश्चात् होता है। कवि की लालसा है कि वर्तमान संसार को चकनाचूर करके नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाय। पर कितना पराश्रित है मानव।

पुस्तक को मूंदते हुए कवि कहता है कि चन्द्रमा चमक रहा है। आज के बाद भी यहाँ चांद यहां आकर मुझे ढूंढेगा पर मैं जीवन के पार रहूंगा।

अब हम उन आठ रुबाइयों पर आते हैं जिन्हें हम छोड़ गए थे। इनमें कवि अपने समय में फैले हुए वादों मतों की ओर इशारा करता सा प्रतीत होता है।

सायंकाल के समय कुम्हार की दूकान पर बर्तन एक कतार में रखे थे। उनमें

से एक बोला " कुम्हार क्यों मट्टी का तुच्छ शरीर बनाता है "? दूसरा बोला कि " मैं व्यर्थ नहीं बनाया गया मुझे मेरा बनाने वाला तोड़ेगा नहीं "। तीसरा बोला " जब चिड़चिड़ा बालक भी अपने दूध पीने के कटोरे को नहीं तोड़ता तो फिर परमात्मा ही कैसे तोड़ देगा "। फिर एक बोला " भाई, हममें जो दोष हैं वे हमारे थोड़े ही हैं। वह बनाने वाले का हाथ कांपा और हम खराब बन गए "। एक और ने कहा कि " नहीं हमारा मालिक तो बहुत अच्छा है। " एक ने कहा " भाई, हमारा शरीर सूख रहा है हमें तो कोई मदिरा पिला दे तो हमारा गात्र सरस हो जाय।

यही भाव उन आठ रूबाइयों में है। उनका सम्बन्ध भिन्न 2 मत मतान्तरों से है। जैसे कि बुद्ध परमात्मा को दोष दिया करते हैं कि भाई, यह शरीर न होता तो ही अच्छा था। वैसे यह मानसिक परिस्थिति जीवन में प्रायः सभी की कभी न कभी तो हो ही जाती है। कई मत जो कि सुखी होते हैं कहते हैं कि भाई! जीवन

तो बड़ा अच्छा है और उन्हें ध्यान भी नहीं होता कि उन्होंने भी मरना है। वे परमात्मा नाम की चीज के ध्यान में रहते हैं। कुछ लोग देवताओं को मानते हैं केवल इसी लिए कि वे उनको अपने दोषों का कारण कह सकें। इत्यादि 2 इनमें मत मतान्तरों की गम्भीर रूप हंसी की गई है।

रुबाइयात के बारे में कहा जाता है कि पाखंडों का अत्यन्त विरोधी है और इतने सुन्दर रूप में उनका खण्डन करने वाला अब तक कोई नहीं हुआ। वह भौतिक आनन्द को गौणता नहीं देता। तपस्या आदि की चीज को वह हास्यास्पद से अधिक नहीं समझता। उमर खय्याम सूक्ष्म दर्शिता के लिए प्रसिद्ध है। वह बड़े 2 भावों को यथा सम्भव छोटे रूप में लिखने का पक्षपाती है। उसकी एक 2 रुबाई अपने आप में एक सुन्दर काव्य है। प्रायः सभी रुबाइयाँ स्वतन्त्र हैं। इसलिए उन पर खण्ड काव्य या महाकाव्य की भांति समालोचना करना सम्भव नहीं। अतः इस रूप में मैंने उमर खय्याम को कुछ स्पष्ट करने की चेष्टा की है।

अजब ! हैरान हूं लेडी तुम्हें कैसे रिझाऊं मैं ॥



मि. [redacted] - (जर्मनीलेडी से) मेमी ! इतनी उतावली क्यों हो रही हो ? वेट ए बिट् प्लीज।

मधुप

हे ! मधुप पेट भर पीलो
फूली है जीवन क्यारी ।
फिर मौका नहीं मिलेगा,
पीलो पीलो मधु रसधारी ॥

कल काल चक्र में पड़के,
है कौन जानता जीवन ।
पीलो पीलो अब पीलो
है फूली जीवन क्यारी

हे ! मधुप पेट भर पीलो,
फूली है जीवन क्यारी ।
मधु रसना मिटालो अब ही,
फिर कहना मत रसना ही ॥

है काल ले गया मुझ को,
नृशंस दुरात्मा निरदयी।
मत समय गंवाना वीरो;
छूट जायेगी यह क्यारी॥

ए! मधुप पेट भर पीलो
फूली है जीवन क्यारी।
हो मस्त पियो मन भरके अ[illegible]
इस दुनिया पर॥

पड़कर फंदे में इस के,
कभी कभी न गंवाना तनं।
पर को फंदे में पड़कर;
है गंवा रहा मधु रसभरी॥

हे मधुप पेट भर पीलो,
फूली है जीवन क्यारी॥
. . . . ;
. . . . ॥

राजहंस

उड़ कर स्वच्छन्द पवन में,
चल सिन्धु ऊर्मियों पर चढ़ ।
रवि - शशि - तारक - कर कर लो;
यूँ, घूम घूम फिर दिक् दिक् ॥

पीलो पराग मधु वासित
फैली जो भारती क्यारी
हे मधुप घेर जा पीले
फूली है
जीवन
भारती ॥

श्री पन्त जी

वर्तमान कवियों में श्री सुमित्रानन्दन पंत का स्थान अग्रगण्य है, यदि उन्हें सर्वश्रेष्ठ न माना जाय तो भी उन्हें हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में से एक कहा जा सकता है। पंत अपने साथ हिन्दी में एक नया युग लेकर प्रविष्ट हुये हैं। यद्यपि हिन्दी-कविता अभी पूर्णतया विकसित नहीं हुई है तो भी आज कल वह लगातार प्रगति की ओर अग्रसर हो रही है और इस प्रगति में श्री पंत सदृश कवि सहायक हैं। जिस प्रकार ब्रज भाषा की कविता के ऊपर सामयिक परिस्थिति का प्रभाव पड़ा था और देव आदि कवियों ने उस समय के विलासिता-मय जीवन की झांकी अपनी कविताओं में स्पष्ट तौर से दिखा दी है। उसी प्रकार पंत इत्यादि कवियों पर आधुनिक युग की छाया पड़े बिना न रह सकी। और वे नये सांचे में ढल गये।

श्रीयुत पंत अंग्रेजी तथा बंग भाषा के अच्छे ज्ञाता हैं, उन्होंने दोनों भाषा के कवियों का अच्छा अध्ययन किया है। अतः बंग तथा आंग्ल साहित्य की स्वच्छन्द वृत्ति उनके हृदय पर पूर्णतया अंकित हो गई है। और श्री पंत ने हिंदी के अन्दर एक नये युग को जन्म दे दिया है। उनके साथ श्री निराला जी का भी नाम लिया जा सकता है। ये लोग हिन्दी कविता की दिशा बदल कर एक नई दिशा में ले जा रहे हैं।

श्री पंत एक दम स्वतंत्र प्रवृत्ति के कवि हैं, वे छन्द, भाषा, व्याकरण किसी के बन्धन में बंधना नहीं चाहते। उनको चाहिये एक स्वतंत्र दिशा, स्वतंत्र भाषा, स्वतंत्र छन्द और स्वतंत्र प्रवाह, जिसमें वे अपने हृदयस्थित भावों को निर्बाध रूप से प्रकट कर सकें। वे ब्रज भाषा की तरह छन्द अथवा अनुप्रास के बन्धनों में बंधना नहीं चाहते। वे चाहते हैं अपनी भाषा द्वारा एक शब्द चित्र खींच

देगा, जिससे अन्तःस्थित भाव स्वयं ही झलकने लगे। जैसा कि वे पल्लव के प्रवेश में लिखते हैं:-

"कविता के लिये चित्र भाषा की आवश्यकता पड़ती है - उसके शब्द सस्वर होने चाहिये जो बोलते हों, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र और चित्र में झंकार हों, यही उनका छायावाद है।"

पंत की स्वातंत्र्य प्रियता उनके पल्लव में देखी जा सकती है। उसके प्रवेश में उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि आधुनिक हिन्दी में शब्द, छन्द और लिंग आदि का प्रयोग किस प्रकार निश्चित रूप से होना चाहिये। पंत पर रवीन्द्र नाथ ठाकुर की छाया काफी पड़ी है और सम्भवतः उन्हीं से इन्होंने इस स्वातंत्र्य प्रियता का सबक सीखा है।

पंत शब्दों का लिंग प्रयोग स्वतंत्रता से प्रयोग करते हैं वह उनकी कविता में स्थान स्थान पर देखा जा सकता है । एक जगह लिखते हैं ———

रुधिर से फूट पड़ी रुचिमान,
पल्लवों की यह सजल प्रभात।

यहां प्रभात शब्द जोकि पुल्लिंग में प्रयुक्त होता है, इन्होंने स्त्रीलिंग में प्रयोग किया है । इनका कहना है कि विभिन्न शब्दों के विभिन्न स्थानों पर भिन्न लिंग में प्रयोग करने से उनका सौंदर्य बढ़ जाता है ।

इसी प्रकार उनके छन्दों में निरालापन भी देखी जा सकती है। जिसका अनुकरण आज कल हिन्दी में बहुत लोग करने लगे हैं । इन्होंने किसी विशेष छन्द के बन्धन में बंधकर अपने भाव के प्रवाह को बिना रोक-टोक निकलने दिया है।

जैसे कि —— .

देखता हूँ जब पतला,
इन्द्रधनुषी हलका,
रेशमी घूँघट बादल का
खोलती है कुमुद कला
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान,
मुझे करता तब अन्तर्धान,
न जाने तुमसे मेरे प्राण
मांगते क्या आदान ।

इसमें स्पष्ट रूप छन्द की निरवच्छिन्नता दीखी झलकती है। छन्द किस प्रकार बरसाती नाले की तरह उमड़ उमड़ कर बह रहा है। जो कि पंतजी की दृष्टि में कविता के लिये आवश्यक है।

इसी प्रकार पंतजी कविता के साथ संगीत को महत्व देते हैं। क्योंकि संगीत से श्रोता के सामने भाव चित्र खींचा जा सकता है। इसके लिए स्थान स्थान पर

प्रयोग मधुर शब्दों का प्रयोग करते हैं वे पद्य-पक्षी हैं। वे स्वयं अच्छे गायक हैं अतः अपनी पसन्द के अनुसार सरस शब्दों का प्रयोग करना चाहते हैं।

यहां तो मैंने संक्षेपतः पंत जी की भाषा तथा शैली पर लिखा है। अब मैं उनके भावों पर आता हूं।—

पंत जी कोमल भावनाओं के कवि हैं। क्योंकि उनका जन्मस्थान अल्मोड़ा है जो कि एक पर्वतीय प्रदेश है उन्होंने वहां पर ये चिर काल तक निवास कर चुके हैं अतः उनकी कविता पर प्रकृति की बहुत भारी छाप है जिससे उनकी प्रकृति चित्रण स्पष्ट तथा सजल बनती है; उनकी प्रत्येक कविता में प्रकृति का पुट देखा जा सकता है।

पहले भी लिखा जा चुका है कि पंत जी चाहते हैं कि श्रोता के सामने

भक्तों के द्वारा एक चित्र तैयार कर दिया जाय जिससे भाव स्वतः झलकने लगे। उसके लिये भाषा का ललित होना अत्यावश्यक है। पंतजी की दृष्टि में उनकी भाषा काफी उत्कृष्ट तथा परिष्कृत है। परन्तु यह आवश्यक है।

कवि पंत सांसारिक सौन्दर्य को छोड़कर प्रकृति ही में लीन रहना चाहते हैं। जैसा उन्होंने मोह शीर्षक कविता में कहा है :—

छोड़ द्रुमों की छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन,
भूल अभी से इस जग को।
रचना—

इसी प्रकार उनकी कविताओं में उनकी प्रकृति चित्रण शैली झलकती है।

कविने प्रकृति में ही लावण्यिक सौन्दर्य को देखा है। वह अपने को प्रकृति में लय कर देना चाहता है। उन्होंने प्रकृति से अपना रागात्मक स्थापित कर लिया है, उनकी कविता में यह स्पष्ट देखा जा सकता है। कवि-नारी रूप का वर्णन करते हुये लिखता है -

मलिनों से उजली गुजार,
गुमानों से गुहार
मंद से संध्या का संसार
चाँद से अग्नि उभार
मिले हैं इन्हें विकच उपहार
लावण्य से विस्तार'

इस प्रकार कविने नारी रूप को भी प्रकृति के रूप में देख लेता है। उनकी छाया, पल्लव, गुंजन आदि कविताओं उनकी प्रकृतिप्रियता देखी जा सकती है। बहुतों ने प्राकृतिक कविता में लिखी है पर पंत जैसा लिखा कहीं नहीं।—

राजहंस

पंत जी की रचनाओं ने उनकी प्रकृति चित्रण का जीवन जागृत किया है। उन्होंने किस प्रकार प्राकृत उपादानों को जीवन रूप दिए और उनके सभी प्राकृतिक वस्तुओं को मानवीय अथवा दैवीय रूप देकर उनमें चेतना अथवा उनके में जान डाल दी है। और जो उन्होंने उनके द्वारा नवयुग की कल्पना की है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। कवि को प्रकृति से नया संदेश मिलता है। वे फूलों की तरह खिलते हैं हंसना चाहते हैं। वे भी ऐसे मनुष्यों में हैं जिन्हें ईश्वर पर विश्वास है। और नई नई आशाओं के लिए आगे बढ़ना चाहते हैं। यही उनकी विशेषता है कि वे ईश्वर को भगवान के रूप में देखते हैं जैसा उनकी 'वीणा' तथा अन्य कृतियों में स्पष्ट दिख जाता है।

वे नगर को बहुत ऊँचा मानते हैं - ऐसा उन्होंने कहा है —

मानव की रचना सुन्दरतम ।

और उन्होंने नगर को भी बहुत अच्छा बताया है - लिखते हैं —

कुंकुम-कला है यहाँ विमलता:
वह तो कैसा निर्मल है,
मैं तो ऐसी निर्मलता का
कायल तो यह वाकई है।

वे उनको को स्वच्छ निष्कलुष और स्वच्छ लगते हैं ।

वे नगरी-जनजीवन लेकर - लिखते उन लोगों के लोक में उपस्थित रहते हैं और नगर के जीवन का दर्शन करना चाहते हैं । लिखते हैं —

मैं अपने जीवन की पूजा
स्वीकारो मन-पुष्प!

इसमें कितनी महिमा है और आत्म समर्पण का कितना मधुर रस आता है!

कहते हैं कि वह कोमल भावनाओं के कवि हैं - संसार के दुःख, पीड़ा, वेदना की धार उनके कोमल मन पर तीक्ष्ण प्रभाव जमा देती है और वे द्रवित हो जाते हैं उनके आंसू गान बनकर निकलने लगते हैं। अभिवेदना को जीवन देते हुये लिखते हैं —

आज वेदना अनुभवों को
गा गा कर जीवन दे दूं,
हृदय खोल कर
रो रो कर।

अविरल आहों से भर भर कर
उर कठोर मन को करते,
उन्हीं लतिकाओं से छिन छिन
फिर वियोग दुख को हरते,

रजनि निराशा में विलीन हो,
उनको नित नव मन दे दूं
अश्रु नीर से धो धो कर।

इसी प्रकार और आहों के भी बंधनों की एक बड़ी लम्बी शृंखला दी जा सकती है। इनके आंसू और उच्छ्वास इनके उत्कृष्ट उदाहरण हैं —
आंसू में कहते हैं —

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।

राजहंस

आह कर आँखों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान।

हाय किसको उर में उतारूँ
अपने उर का भार,
किसे अब दूँ उपहार
गूँथ यह अश्रु-कणों का हार।

इस प्रकार उनकी आँसू कविता सारी की सारी वेदना का प्रतीक है। कवि के दुखी उर का स्पष्ट चित्र है। उनकी कविता में जगह-जगह उनकी वेदना, करुण और नीरव रुदन छिपा रहता है।

गुप्त जी की दृष्टि —

— आनंद.

आज हम कविवर मैथिलीशरण गुप्त की विचार धारा की तह तक पहुँच कर संक्षेप में, गुप्त जी की फ़िलॉसफ़ी क्या है, इस बात पर कुछ पंक्तियाँ लिखना चाहते हैं।

गुप्त जी की दृष्टि में यह संसार केवल एक कर्मक्षेत्र है। मनुष्य को इस बात पर आग्रह करने का अधिकार नहीं है कि. अमुक कार्य का अमुक फल मुझे मिलना ही चाहिये। जो कुछ भगवान मनुष्य को देता है, उसको एकभाव स्वीकार करके निरंतर कर्म करते जाना ही मानव जीवन की सफलता है।

जीवन और मरण कुछ नहीं, सिवाय इस के कि, काम करना और थोड़ी देर के लिये विश्रांति लेना।

मनुष्य का जीवन फूलों की सेज नहीं है। सुतीक्ष्ण कण्टकाकुल स्थलों से मनुष्य के जीवन मार्ग का निर्माण हुआ है। इस कण्टक पूर्ण जीवन मार्ग में एक से एक बढ़कर कठिन कर्त्तव्य उपस्थित होते हैं, इन कठोर कर्त्तव्यों के पालन में हृदय की कोमल भावनाएँ ही सबसे अधिक बाधक होती हैं। जो लोग कोमल भावनाओं के सामने अपने कठोर कर्त्तव्यों को बलि हुत कर देते हैं, जैसे कि, इसी युग में सम्राट् अष्टम एडवर्ड ने लेडी सिम्पसन के लिये राज्य-भार का परित्याग कर दिया, वे निकृष्ट कोटि के व्यक्ति हैं। किन्तु जो व्यक्ति इन कोमल भावनाओं को निष्ठुरता पूर्वक पराजित करके अपने कठोर कर्त्तव्यों से तिलमात्र भी इतस्ततः नहीं होता, वह धन्य है, वह वीर है, वह महान् है, और पूज्य है। माता का वात्सल्य, भाइयों का प्रेम, पिता का स्नेह, पत्नी का अनु-

राग, तथा इतर कुटुम्बियों की ममता, ये सब कठोर कर्तव्य के पालन से विचलित करने वाली हृदय की कोमल भावनाएँ हैं।

ये कोमल भावनाएँ अपने आप में अत्यन्त पवित्र एवम् आदरणीय हैं। ये बुरी नहीं हैं; बुरी तभी हैं जब ये जीवन के कर्तव्य पूर्ण मार्ग में रोड़ा अटकाने के लिये उद्यत हो जायँ। अर्थात् इन भावनाओं के कारण मनुष्य कर्तव्य से च्युत होकर इन्हीं में आसक्त हो जाय। यदि अनासक्ति पूर्वक मनुष्य इन भावनाओं से सम्पृक्त या संयुक्त रहे तो यही भावनाएँ उसको ऊँचा उठाने में सहायक बन जाती हैं।

अतः कर्तव्य के मार्ग में, आसक्ति पूर्वक संयुक्त होने वाली हृदय की कोमल भावनाएँ बाधक समझी जानी चाहियें। सब

नहीं ।

मनुष्य अत्यन्त परवश है। एक डग भी चलने के लिये उसे दूसरी शक्तियों का अवलंबन करना ही पड़ता है। उसकी कितनी इच्छा होती है कि, मैं अमुक काम करूँ; किन्तु उसे अनेक बार अपनी उस उत्कट इच्छा के विरुद्ध भी कार्य करने के लिये विवश होना ही पड़ता है। कौन चाहता है कि, अपने प्रिय परिजनों का त्याग कर के, किसी एकान्त अरण्य का आश्रय ले? लेकिन उसकी मर्ज़ी हो या न हो, जिस शक्ति के इङ्गित पर संसारभर की सम्पूर्ण एक्टिविटीज़ नाच रही हैं, उसकी मर्ज़ी के मुआफ़िक काम करना ही पड़ता है! और वह भी झख मार के!

पर इस का मतलब यह नहीं

मनुष्य के अपने हाथ सर्वथा मौजूद ही हैं! मनुष्य में भी अनंत शक्ति विद्यमान है। मनुष्य में इतनी शक्ति है कि, वह उस असीम शक्ति को भी, जिसके सामने मनुष्य नितान्त पराधीन है, चौंका दे सकता है। फिरभी, चौंका, चौंका ही है; तथ्य नहीं!

दुनियाँ में जो जोभी पदार्थ दिखाई देता है, प्रत्येक के दो साइड्स् हैं। हम जिस पदार्थ को फ्रंट साइड में देखते हैं; तो भूल नहीं जाना चाहिये कि, उस पदार्थ का एक दूसराभी साइड है; जिसे हम बैक साइड कह सकते हैं। इसलिये हमको प्रत्येक कार्य करते वक्त बहुत ही सावधानी से काम करना चाहिये। अनेक बार ऐसा होता है कि, जिसे हम अपना समझते हैं, अपने दिल के

विरुद्ध से विरुद्ध रहस्यों को भी जिन पर प्रकट करने के लिये नहीं रहस्य छिपाते, उन्हीं के द्वारा हल हो जाता है। इन सब बातों को भली प्रकार आकलन करके जो व्यक्ति अपने मार्ग पर आगे बढ़ता जाता है, वह विजयी है। इस प्रसंग में गुप्तजी लिखते हैं —

कीट पूर्ण हैं कुसुम,
कण्टकित है मही;
जो इन से बच निकल
चले विजयी वही।

जो व्यक्ति, जीवन के कठोर कर्तव्यों से पराङ्मुख होकर आत्मघात करने की कोशिश करता है, वह कायर है। मनुष्य को दीर्घजीवन दीर्घ दुःखों की प्राप्ति के लिये बनाये रखना चाहिये। आत्मशुद्धि के लिये इन दीर्घतर

दुःखों का स्वागत करना अनिवार्य है। स्वयं के दुःखों से चिर विमोक्ष प्राप्ति का साधन कर्मफल के तौर पर उपलब्धमान इन दुःखों का अङ्गीकरण ही है।

मानव जीवन की सफलता आत्मसमर्पण मे है। अपने आपको उस असीम शक्ति के हाथों सौंप कर, दुःखों का मुकाबिला करते जाना ही मात्र कर्तव्य है।

हमारी दृष्टि में गुरुजी की फिलॉसफी का संक्षिप्त रूप यही है।





ऊर्ध्वाकाश में विचरण

भारतेन्दु
उपस्नातक

आज कल विमान और हवाई जहाज की आकाश मे ऊर्ध्वगति २ या ३ मील से अधिक नही है। परन्तु प्रो पिकार्ड (Pickard) के आकाश मे ऊंचे उड़ने के प्रयोग तथा उस के बाद रूस और अमरीका में बलून द्वारा ऊर्ध्वगमन के रिकार्ड के कारण वैज्ञानिको ने, खासकर हवाई मार्गान्वेषकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। प्रो पिकार्ड तीन बार आकाश के ऊर्ध्व-स्तर मे उड़कर १० मील तक पहुंचे, उस के बाद रूस के तीन वैज्ञानिकों ने ६ इस रिकार्ड को तोड़कर ६२,००० फीट (लगभग १२ मील) की ऊंचाई प्राप्त की। दुर्भाग्यवश उन

थे, बलून का थैला (गन्डोला), जिस में वे बैठे हुए थे, टूट गया और तीनों नीचे आते ही मर गए। अब के अमरीका के केप्टन स्टीवन्स और ॲन्डरसन नामक दो उड़ाकों ने इस को बड़े पैमाने पर तमाम करके 'नेशनल ज्योग्रोफिकल ॲसोसिएशन' उस के अधीन 'एक्सप्लोरर' (Explorer II) में उड़कर संसार में सबसे अधिक 62,356 फीट (लगभग 13 मील) की ऊंचाई पर पहुंचे।

इन प्रत्येक प्रयत्न में आकाश में वायवीय आवरण का वैज्ञानिक अध्ययन महत्व पूर्ण है। प्रत्येक उड़ान पर अंकित वैज्ञानिक यन्त्रों ने 10 मील ऊपर स्थित स्तर जिसे स्ट्रेटोस्फियर कहते हैं, की ओर ध्यान खींचा। इन में मात्र बलूनों का ही उपयोग किया गया, इस कारण उनकी व्यवहार में विमान

न कर अधिक से अधिक कितनी ऊंचाई पर जा सकते है, और क्या लाभ हो सकता है, इस प्रश्न का हल अभी बाकी था। उस समय स्क्वाड्रनलीडर. अेफ आर डी स्वेन्न (रायल एअर फोर्स) ने एक विशेष प्रकार के एक परवाले विमान मे उड़ान ली। इस प्रयोग से 'हवा मे अधिक ऊंचाई पर हवाई जहाज का चलाना और उसके लाभ' इस प्रश्न का पुनरावर्तन हुआ।

यह तो सब को विदित ही है कि ज्यों ज्यों ऊपर जाते हैं, त्यों त्यों वायु की घनता विरल होती जाती है। पतली हवा में कोई भी वाहन दौड़ाना हो तो वायु का अवरोध कम होता है। इससे यदि अन्य कोई बाधा न आवे तो वायुयान

की चाल ऊपर के आवरण में अत्यंत बढ़ाई जा सकती है, यह स्पष्ट ही है। जो यान जमीन से ½ मील ऊपर २०० मील की चाल से आ सकता हो वह १० मील पर ५००-६०० मील की रफ़्तार से आसानी पूर्वक मुसाफ़री कर सकता है। अर्थात् लंदन से चला हुआ वायु-यान ६-७ घंटे में ही भारतवर्ष में आ जायगा।

इसके अतिरिक्त उपरी आकाश (स्ट्रेटोस्फीअर) के अन्य कई फायदे हो सकते हैं, ऐसा प्रतीत होता है। वायवीय तूफ़ान, बादल, वर्षा, विद्युत तथा हवा के प्रचंड प्रवाहों से 'स्ट्रेटोस्फिअर' कुछ अंशों तक मुक्त होता है; अतः यह आवरण अनुपात में पर्याप्त शान्त होता है। इसके अतिरिक्त सूर्य के प्रकाश-पथ अधिक पार्थिव या समुद्रिक परिवर्तन के असर से

वह कुछ अंशों में मुख्य हो सकता है। इतनी ऊँचाई वाले वायुमंडल में यात्रा करना सरल है, यह तो बिलकुल स्पष्ट ही है।

उपर्युक्त फायदों को देखते हुए हवाई मार्ग द्वारा ~~कई~~ स्ट्रेटोस्फीअर में यात्रा करने का प्रत्येक को इच्छा होती है, परंतु इस में भी और मुश्किलें हैं। वायुमंडल के पतले होने के कारण जहाज को उड़ने तथा आगे जाने में सहायक वाहक (Propeller) का बल कम हो जाता है। ~~इसे~~ घनता के अनुसार किसी यान को ऊपर उठाने में कम या अधिक बल लगता है। घन वायुमंडल जितना खींचने का बल उत्पन्न करने के लिए वाहक को (propeller) विशेष चक्र-गति देनी पड़ती है। उपरांत, आंतर दाहक यंत्रों (Internal Combustion Engine) को चक्र-गति उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त शक्ति हवा

में से प्राप्त ओक्सजन पर निर्भर है। ऊपर की वायु में ओक्सजन की मात्रा कम होती है, अतः इस तरह से भी यंत्र की शक्ति कम होजाती है। इस लिए विलक्षणता के जितने लाभ हैं, साथ साथ उतनी ही हानियां भी होती जाती हैं, इस कारण आजकल अधिक ऊंचाई की सीमा तक ही जहाज चलाया जा सकता है। दूसरी एक दिक्कत मुसाफिरों को है। एकाएक विरल वायुमंडल में पहुंचते ही मनुष्य-शरीर के अन्दर श्वास का वेग (दबाव) अधिक होजाने से घातक परिणाम उपस्थित हो जाते हैं। इस कठिनाई को आसानी से दूर किया जा सकता है। अन्दर बैठने के कमरों को बिलकुल बन्द करके उस में कृत्रिम ओक्सजन (Artificial oxygen) प्राप्त कर कराई जा सकती है। परन्तु वायुयान के

(propeller) की गति को बढ़ाकर तीव्र वेग से यात्रा करने की संभावना कुछ कम दिखाई देती है।

ऊपर की प्रत्येक बातों को ध्यान में रखते हुए ऑक्सीजन की सुविधा जनक मर्तबान (Jars), विद्युत-बैट्री आदि अतिरिक्त सामान को लेकर स्ट्रैटोस्फीअर में १५० मील प्रति घंटा की चाल से जहाज़ उड़ाए जा सकते हैं इसका अनुमान कर सकते हैं। Rocket द्वारा यात्रा करने का प्रयत्न कुछ असंभव प्रतीत हो रहा है, क्योंकि एक दम गतिवेग (acceleration) हो जाने से व्यक्तियों को बड़ी भारी प्रतिक्रिया (Reaction) अनुभव होगी। इसके अनवरत प्रयत्न तथा प्रयोग रूस में किए जा रहे हैं।

इस प्रकार आज की दुनिया

हवा में २-३ मील ऊंचे की सैर से संतुष्ट न होकर, १०-१२ मील, और उससे भी ऊंचे अनन्त ऊर्ध्वाकाश में स्वेच्छया विहरण करने को लालायित है। शायद—१-२ साल में यह भी अपनी सफलता का यश प्राप्त कर लेगा।

['प्रस्थान' गुजराती मासिक से अनूदित]

भावना युद्ध

निकलती ज्वालाएं विकराल

मिटाती ताप वेदना भ्रान्ति

पान करती संसृति सुखसार

भर देती मन में चिर शान्ति

[२]

नाना विचार अनेक कल्पना

यही हृदय का है व्यापार

कभी उपजता कभी सिसकता

अन्तकाल होता तारतार

[३]

हृदयस्थल की दैवीय भावना
जब रथ पर चढ़ने आती
उसी समय आसुरी भावना
आ निज विजय गान करती

[४]

प्रकृति देवी के प्रेमपाश में
~~मिटा सभी आसुरी भावना~~
फंस जाता मेरा मनमीन
पता न चलता निशिवासर का
हो जाता इतना तल्लीन

[५]

हे अन्तस्तल के प्रदीप तुम
मिटा सभी आसुरी भावना

मेरी रग रग में भर दो फिर

तम नाशक दैवीय भावना

❀ ❀ ❀

[६]

यही भावना यही प्रार्थना

यही हृदय की अभिलाषा

एक बार कम से कम कर दो

मेरी पूरी अभिलाषा

हमारा मधुर संसार

संसार मे दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं, आशावादी और निराशावादी। परन्तु यह देखा जाता है कि कभी कभी आशावादियों के भी मुख से संसार का विनश्वर-पना निकल ही जाता है। अर्थात् उनको भी संसार की निस्सारता को मानना ही पड़ता है। सचमुच जब हमारे किसी संबन्धी माता पिता या भ्राता की मृत्यु

आती है तब हमारे मुख से सहसा यह ~~यह~~ निकल पड़ता है कि अरे, यदि इस संसार में मरते ही आये थे तो पैदा ही किसलिए हुए थे। खुदा यदि पैदा ही न करता तो अच्छा होता। उस समय थोड़ी देर के लिए बिलकुल सन्नाटा छा जाता है। जिस घर में उस संबन्धी की मृत्यु होती है वह शान्त, निरर्थक, निस्सार प्रतीत होता है। वह गृहस्थी के भोग-विलास, जिनको कि वह मृतसंबन्धी के साथ भोगा करता था, निस्सार, क्षणिक और निस्स्वाद प्रतीत होते हैं। जो किसी समय अमृतसदृश थे.

विषसदृश प्रतीत होते हैं। आंखें होते हुए भी दिखाई नहीं देता। अन्दर से इच्छा उत्पन्न होती है कि मेरा प्राणप्यारा आज संसार से उठ गया है, चलो अन्तिम समय तो कुछ बात-चीत कर लें। परन्तु वहां सि-वाय दुर्गन्ध के और कुछ नहीं है। अपनी सत्ता को भूलता हुआ, कुछ पागल सा हुआ हुआ, अपने मृतसम्बन्धी के पास जाकर खड़ा होकर कहता है कि हे प्राणप्यारे, कुछ तो बोल। परन्तु वहां बोलने वाला कौन है, वहां तो उसकी आत्मा न जाने किस लोक में पहुंच

चुकी होगी। जब उत्तर नहीं मिलता तो
वह समझता है कि वास्तव में संसार
ही निस्सार है। मेरा प्राणप्रिय
जो कि मेरे साथ इतने भोग
भोगता था, आज वह चुप है उसके
मुख से आवाज़ तक नहीं निकलती
न जाने किस घमण्ड में चूर हो
कर मुझे बोलता भी नहीं। चलो,
छोड़ो इसको और अपने घर
चलो। इसको यहीं फूंको। इसमें क्या
धरा है। अब क्या हो सकता है
सिवाय रोने के। प्राणप्यारा चिता
बना कर फूंक दिया जाता है। उसकी
राख बन जाती है। अरे। और

कुछ नहीं तो इसकी राख ही ले चलो। इसी रख कर हम खुश हुआ करेंगे। सचमुच ऐसे दुख समय संसार क्षण-भङ्गुर सा प्रतीत होता है और इतना अधिक क्षणभङ्गुर प्रतीत होता है कि दिल घबरा जाता है। मस्तिष्क में चक्कर सा आजाता है। घर के आंगन में सन्नाटा सा छा जाता है। उसके हृदय में तथा शरीर के प्रत्येक अङ्ग में सन्नाटा छा जाता है। घर की प्रत्येक वस्तु में भी सन्नाटा सा छा जाता है कि वे भी ऐसी मालूम पड़ती हैं मानो कि उसके दुःख से दुःखित हो कर रो रही हों। कहते भी

तात्पर्य यह है कि निर्जीव और सजीव दोनों वस्तुओं में सन्नाटा सा छाया हुआ ज्ञात पड़ता है।

पास स्थाने में गृहस्थी के सुन्दर से सुन्दर भोगविलास के सामान पड़े हुए हैं उनमें बिलकुल आसक्ति नहीं होती। पहनने के उत्तमोत्तम चमकीले बढ़िया रेशमी वस्त्र पड़े हुए हैं तो भी पहनने की इच्छा नहीं होती। सोने के लिए आराम देने वाले बढ़िया पलङ्ग पड़े हुए हैं किन्तु सोने की इच्छा नहीं होती। ऐसा क्यों होता है? उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि ये बढ़िया पलङ्ग, उत्तमोत्तम वस्त्रादि व भोग-

विलास की सामग्रियां अभी ही नष्ट हो जाएंगी। ये घर की निर्जीव वस्तुएं भी अभी नष्ट हो जाएंगी। कब। जब कि हमारी ये आंखें इस संसार में सदा के लिए बन्द हो जाएंगी अथवा यों कहें कि हम एक सदा की गाढ़-निद्रा में सो जाएंगे। उस समय हमें हमें क्या मालूम कि अपने आंगन, पलङ्ग आदि भोग विलास की सामग्री की। क्या मालूम हम कहां जाएंगे। क्या कभी इस संसार में फिर लौट कर आएंगे कि नहीं। इसका कुछ नहीं पता।

"भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः"

उस समय हमारा देह शरन बन

लिए
चुका होता है। उसके फिर लौट आने का कोई मतलब नहीं।

हम किस तरह कह सकते हैं कि वह फिर लौटकर आएगा ही। कुछ लोग पुनर्जन्म की सत्ता को स्वीकार अपने आप को संतोष देते हैं कि वह लौट कर आता है। हम उनसे पूछते हैं कि यह कैसे होता है सकता है। तुम्हारे अपने दिल को संतोष देने के सिवाय यह कुछ और नहीं है, ढकोसला है। तुम कहते हो कि आत्मा है। यह ऊपरी शरीर भस्म होता है परन्तु अन्दर की आत्मा जीती रहती है। हम पूछते हैं कि यह कैसे जीती रहती है,

क्या तुमने हमारे शरीर के अन्दर प्रवेश
करके देखा है ? यदि नहीं तो फिर
काहे को व्यर्थ की बकवास करते हो।
यदि देखा है तो उसका क्या स्वरूप
है ! यदि स्वरूप नहीं बता सकते
तो फिर तुमने क्या देखा और
कैसे आत्मा का ज्ञान किया। हम कैसे
मानें कि आत्मा है ! तुम कहते हो
कि कि वह शरीर से निकल कर
इस बाहरी वायुमण्डल में घूमती है।
तो हम पूछते हैं कि वह किस जगह
रहती है। जैसे मनुष्य के रहने का घर
होता है। पक्षी के रहने को लिए घोंसला
होता है। वैसे ही इसके रहने के लिए

कोई स्थान अवश्य होना चाहिए। ये सब ~~आत्मा~~ एक स्थान नहीं होने चाहिए किन्तु नाना स्थान होने चाहिए। क्योंकि इस संसार में अनेक जीव मरते रहते होंगे और उनकी अनेक आत्माएं होंगी। उनके स्वरूप और स्वभाव भिन्न भिन्न होंगे।

तुम कहते हो कि हम पूर्वजन्मों के कर्म और गुणों के अनुसार यह निश्चित करते हैं कि आत्मा है। क्योंकि ऐसा देखा गया है कि अनेक आत्माओं ने जन्म लिया और अपनी पूर्वजन्म की बातों को बताया। हम तुमसे पूछते हैं कि क्या तुम सारे संसार को

जानते हो । संसार की बात अलग रही किन्तु तुम अपने को ही नहीं जानते हो। यदि अपने को जानते होते तो इतना पाप और अत्याचार कैसे करते, और तुम्हारा जीवन बिलकुल शुद्ध पवित्र होता परन्तु बात ऐसी नहीं है। जब तुम अपने को ही नहीं जानते तो और संसार को क्या जानते होगे। हम तुमसे पूछते हैं कि यह आत्मा वही है जो पहले जन्म मे थी। क्या तुम इसको निश्चय पूर्वक कह सकते हो । हम कहते हैं कि उस जैसी आत्मा की शकल वाली कोई और आत्मा होगी और उसके भी

रूप, रंग और कार्य मिलते होंगे। तुम्हारा इस में क्या प्रमाण है? तुम स्वयं उसकी मृत्यु के बाद उसके साथ घूमे ही नहीं हो। हां तुमने उसकी बातों को सुनकर अनुमान अवश्य किया है कि यह पुनमिया की ही आत्मा होगी। परन्तु तुम्हारा अनुमान गलत भी हो सकता है तो फिर किस लिए खामखाह मगज मार रहे हो। क्यों नहीं संसार की क्षणभगुरता को स्वीकार करते हो। संसार मे प्रत्येक चीज नष्ट होती है। - - - - -
- - - किसी का जीवन थोड़ा होता है और किसी का ज्यादह।

आज मुझे संसार में दुःख ही दुःख नजर आता है। धनियों के पास जाऊं तो उन्हें धन सम्हालने की फिक्र है। राजाओं के पास जाऊं तो वे राज्य सम्हालने की चिन्ता से व्याकुल हो रहे हैं। विद्यार्थियों के पास जाऊँ तो उन्हें परीक्षा में पास और फेल होने की चिन्ता है। किसी गरीब बेचारे आदमी के पास जाऊँ तो उसे रोटी और कपड़ों की चिन्ता मार कर खा रही है। लूले लंगड़े, अन्धे बहिरे काने, और व्रण वाले सभी अपने दुःख का रोना रो रहे हैं। और हाथ फैला कर बैठे

कुछ भीख मांग लेते हैं। और सोचते हैं कि दो दिन की दुनिया है, इसमें क्या किसी का ठिकाना। जैसे तैसे जिन्दगी व्यतीत कर ले।

वास्तव में यह दुनिया दो दिन की दुनिया है। दुखों और चिन्ताओं के भार से जब हम दब चुके होते हैं तो हमें संसार की क्षणभंगुरता दिखलाई देती है। इस लिए हमको अभी इसी बार ही संसार के तमाम भोग भोग लेने चाहिऐं। न कि जाने कब मृत्युदेव मुंह फाड़ कर हमें अपने अन्दर निगल जाय और फिर कभी लौट कर भी कभी न आए।

उसकी बात

'आप मेरी यह दशा देखकर हँस रहे हैं, बेशक दिल भर कर हँसिये। आपको इसी में औचित्य नजर आ रहा होगा, पर यदि आप केवल एक ही बार मेरे कथानक को सुनेंगे, तो मुझे निश्चय है कि आप उस क्रिया से सर्वथा प्रतिकूल क्रिया करेंगे।'

उस ने ऐसा कहा और मैं खिलखिला कर हँसने लगा। 'उसका कथानक। इसकी स्थिति तो देखो। इस में जीवन है ऐसा कौन कहेगा? और स्वयं कोई महान् पराक्रमी हो इस प्रकार बातें बना रहा है।' दिल में ऐसा सोचकर मैं और भी जोर से खिलखिलाया।

'हँसिये बाबूजी हँसिये। आप यथेष्ट हँस सकते हैं। मुझे इसके लिये कोई रंज नहीं

क्योंकि आप बिना सोचे हँस रहे हैं। आप मेरी बात सुनकर, यदि हँसने योग्य होती और हँसते तो मुझे कोई पर्वा न थी। हँसना या रोना यह तो आप की मर्जी के आधीन है। मुझे इस में क्या पड़ी? आप अपना हँसिये, खूब हँसिये कि चेहरा खिल उठे, मुख से फूल झड़े।'

मैं अपना हास्य न रोक सका, तो भी दिल उसकी बात सुनने को उत्कण्ठित हुआ। उस की बात। जिसे वह 'बात' 'बात' कर रहा है वह है क्या। मैंने कहा 'तो भाई, बताओ तो सही क्या बात है? और तब मुझे हँसना या जो कुछ करना हो, उस की आज्ञा है न।'

"आप जैसा मुझे आज देख रहे हैं, वैसा खण्डहर मैं अपने जमाने में हर्गिज न था, ऐसा आप सहज ही में समझ सकते हैं। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि मुझे बनाने वाले ने कितने प्रेम और ममत्व के साथ मुझे बनाया था?

मेरा स्वामी एक राजा था। मुझे बनाने के लिये वह दिन रात एक कर देता था। प्रतिदिन सोचा करता था-' इसप्रकार [illegible] दिवार खड़ी करूँ तो सुन्दर बनेगा या नहीं, इस भाँति खिड़की स्थापित करूँ तो अच्छा दिखेगा या नहीं? ऐसी दस्तकारी करूँ तो सुशोभित होगा या ऐसी

कहूँ तो?

एक शुभ मुहूर्त पर उसने एक कागज पर मेरा चित्र खींचा। आप की फोटो तो आप सामने मौजूद हो तभी ली जा सकती है, पर हमारी फोटो हमारे अस्तित्व से पूर्व ही ली जा सकती है।

उसने मुझे चिनना प्रारंभ किया। आपने देखा होगा कि गाँव के घरों की ईंट आधी कच्ची ही होती है, पर मेरी ईंट तो अच्छी तरह से पकी हुई थी। उस की एक एक जोड़ में चूने का सुदृढ़ लेप किया गया और एक कमनीय घड़ी पर मैं तैयार हो गया। मेरा सेठ मेरी सुदृढ़ता एवं सौन्दर्य को निरख कर इतना फूला, इतना फूला कि फूल कर कुप्पा हो गया। वह फूला न समाया। उसका हृदय बांसों उछल रहा था। उस गाँव के निवासियों ने भी मुझ पर तारीफ की बौछार कर दी। मेरे बखान करते करते उनके मुँह थके ही नहीं।'

मैंने कहा, 'हाँ, फिर? जल्दी कहो न?

फिर क्या? साल के साल गुजरने लगे, सदियों के बाद सदियाँ आने लगीं, सरदी, गरमी और वर्षा तीनों ऋतु चली जाती, पर मैं तो गाँव में अटल और अचल ही रहा। कभी भी एक बूँद भी तक इस धरा में नहीं पड़ी।

और मेरा स्वामी ? उस के घर में एक छोटा सा सन्दूक था, उसी में वह पैसे रखता था, पर मुझे देखकर लोग इतने खुश होते कि सीधे मेरे स्वामी के पास ही घर बनवाने के लिये आते, अत वह छोटा सा सन्दूक थोड़े ही दिनो मे भर गया और उसके बाद तो सोने और चांदी के दो बड़े बड़े सन्दूक भी अपूर्ण न रहे।'

'हाँ फिर ?' मेरी उत्सुकता बढ़ रही थी

फिर क्या ? एक अंधेरी रात को

'अंधेरी रात को क्या ? कहो न ?'

वह जड़ होता हुआ भी चेतनसा प्रतीत होने लगा। मानो कि उसके जीर्ण परन्तु भव्य वदन की दो विशाल चक्षुओं के कोने में दो अश्रुबिन्दु छिपकर बाहर निकलने की आज्ञा मांग रहे थे।

'और उस अंधेरी रात को मेरी श्रीमती इस असार संसार से चल बसी। दुनिया कहती थी कि उसे प्लेग हुआ था। यह दर्द कैसा होता है, यह तो आप लोग ही समझ सकते है, मैने तो केवल नाम ही नाम सुन रखा है।

'उस ज़माने में आप तो थे ही नहीं। आप के पिताजी भी छोटे बच्चे ही थे। हाँ, मुझे याद है कि आपके पितामह उस समय नौजवान थे और वे समय समय पर इधर आ निकलते थे।'

श्रीमती जी का स्वर्गवास हुए अभी एक सप्ताह भी न बीता था कि उसका चार वर्ष का छोटा बच्चा भी साथ हो लिया। भला, यह प्लेग भी कैसा होगा?

और मेरा स्वामी उस सन्दूक में से सोना और चाँदी निकालने लगा। प्रतिदिन दो, चार आदमी आने लगे। किसी को रुपये देते, किसी को सुवर्ण देते तो किसी को चाँदी देते। वे सन्दूक खाली हो गये। यहाँ दो-चार प्लेग के रोगी होते ही थे

गाँव में सारे घर उजड़ गये, पर मैं अभी तक वैसा ही अटल और अचल था। काल की गति के अनुसार उस गाँव में केवल चार आदमी ही बचे रहे और एक दिन प्रभातकाल में मेरे स्वामी भी मुझे अन्तिम नमस्कार कर चले गये। मैंने उनका चेहरा देखा, आँखों में आँसू छलक रहे थे। मुझे उनके अन्तिम शब्द बराबर याद है। 'हे धरित्री, तू जहाँ ले जायगी वहाँ' इतना कहकर वे चल पड़े। उसके बाद वे कहाँ गये उस बात का मुझे पता नहीं। यह जानने के लिये मैंने भरसक कोशिश की, पर किसी भी रूप कोने से मैं उस बात का पता न लगा सका।

मुझे उसने तालों में बन्द किया था, पर प्रकृति देवी ने वे भी न रहने दिये। बरसों तक मैंने सब प्राकृतिक आपत्तियों से टक्कर खाई, परन्तु एक दिन मैं आँधी के सामने न टिक सका और मैं इस हालत में आ पड़ा यह आप देख ही रहे हैं। अब तो प्रतिदिन क्षीण हो रहा हूँ और कालचक्र में मेरा क्या होगा यह तो परमात्मा ही जाने।'

परन्तु मेरी आँखें आँसुओं से डबडबा आई और गंगा यमुना बहने लगी। हँसने की कोशिश तो मैं कर सकता ही न था, किन्तु पहले मैं क्यों हँसा था इसका कारण मुझे आज भी नहीं मिल रहा।

अनुवादित 'श्रेनी [illegible]'

राजहंस

हंसिनि आओ कहां दूर तुम तैर रहीं वह नील नीर
मुड़कर देखो अतिदूर तीर
है लगता, हो बन गई क्रूर ॥१॥
अम्बर सरसी में कान्तिमान शशि सी बनकर तुम निरख
हो तैर रही कहां पार
जा पाओगी इसका न ज्ञान ॥२॥
बस नीले घन के एक वृत्त में चला करो उद्देश्यहीन
बस सर्ग स्थिति अवसान तीन
है यही, यही तुमको प्रदत्त ॥३॥
जीवन कैसा है प्रणयहीन तुमको न ज्ञेय मुझको न ज्ञात
अज्ञात तुम्हें पर एक बात
कैसे होते हैं प्रणयलीन ॥४॥
कोमल भावों से हीन यान्त्र जीवन पत्थर का एक भाग
जिसमें न मर्म जिसमें न राग

पर शुभ्र और अवदात शान्त ॥५॥

तुम में कोई कोमल न भाव जो मिला कमल उसको प्रसाद

पत्थर का दे, देकर विषाद

तुम नदी चली आगे सत्वर ॥६॥

पर भूलो मत यह रहे याद तुम करतीं कमलों पर प्रहार

पर आता है फिर एक बार

तुम लौटोगी दुखभार लाद ॥७॥

तब सन्ध्या के बुझते प्रदीप के थके हुए आलोक लाल

में लौटोगी लुढ़ पीतगात

अवसान वहीं होगा समीप ॥८॥

तब मुसकाऊँगा उसी काल बज रहे वाद्य हो रहे गान

खिल रही कमलिनी मोदमान

ले सुखहीन मैं अश्रुमाल ॥९॥

यदि हंसिनि यह न सको सहार तो आगे से यह रहे ध्यान

यद्यपि जगती में प्रेम महान

मत फूलों पर करना प्रहार ॥१०॥

अध्ययन

अधि पूर्वक इङ् 'अध्ययने' से धातु से अध्ययन शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ है- अनुभवों द्वारा ज्ञान प्राप्त करना- यह अध्ययन जन्म से ही प्रारम्भ होता है। जब बालक संसार में आता है तब उसे इतना भी पता नहीं होता कि कौन सी वस्तु मेरे लिए उपादेय है और कौन सी उपादेय नहीं है। यहां तक कि उसे अपने माता पिता का भी पता नहीं होता। धीरे२ अनुभवों द्वारा वह अपने ज्ञान को इतना विस्तीर्ण कर लेता है कि बिना पढे लिखे साधारण बातें जान जाता है। उस समय वह उपादेय और अनुपादेय को भी समझने लगता है।

यह ज्ञान दो प्रकार का होता है-

१ जो अपने अनुभवों द्वारा प्राप्त किया जाता है।

२. जो अपने से भिन्न अर्थात् दूसरों के अनुभवों द्वारा प्राप्त किया जाता है। ज्ञान चाहे अपना हो अथवा पराया हो किन्तु दोनों द्वारा प्राप्त ज्ञान को अध्ययन ही कहेंगे। कई वस्तुओं का हमें स्वतः ही ज्ञान हो जाता है और कई वस्तुओं का हम गुरु आदि से ज्ञान प्राप्त करते हैं। संसार में ज्ञेय वस्तुएँ अनन्त हैं किन्तु हमारा ज्ञान एवं समय बहुत थोड़ा है। इसी कारण जीव को अल्पज्ञ कहा है। ज्ञान का बहुत बड़ा हिस्सा हम गुरु आदि अर्थात् दूसरों से सीखते हैं। यदि मनुष्य चाहे कि मैं अपने अनुभवों द्वारा ही ज्ञान प्राप्त कर लूं तो उसे बहुत ही कम ज्ञान होगा। इससे उसकी कूप-मण्डूकता झलकेगी और वह अपने में ही सीमित रहेगा।

मनुष्य को प्रचुर धन, राज्य, महाबल इत्यादि का प्राप्त हो जाना उसके भाग्य और आक-स्मिक घटनाओं पर निर्भर है। किन्तु पाण्डित्य का प्राप्त करना बहुत करके प्रत्येक मनुष्य पर ही निर्भर है। उसके लिए तो राजाओं के वास्ते भी कोई पृथक्

मार्ग नहीं है । निरन्तर कठिन परिश्रम एवं साधना ही उसमें मूलकारण है । यदि कोई मनुष्य चाहे कि मैं बिना परिश्रम के ही पाण्डित्य को प्राप्त कर लूं, तो यह असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। सट्टे आदि के खेलने से एक मनुष्य लक्षपति और दूसरा कंगाल हो जाता है। क्यों? यह सब भाग्य पर निर्भर है। किन्तु ऐसा कोई भी उदाहरण नहीं मिल सकता कि अमुक मनुष्य बिना परिश्रम के पंडित बन गया। ऐसे अनेक लोग हैं जो अवसर को पकड़ कर धनवान हो गए और करोड़पति कहलाने लगे। परन्तु अवसरों का क्षेत्र यहां समाप्त नहीं हो जाता। ऐसे २ अवसर हैं जिनका उपयोग करके मनुष्य इंजीनियर, विद्वान, कला-विशारद, कवि आदि बन सकते हैं। एलिज़ाबेथ फ्राय नामक देवी ने इंगलैण्ड के जेलखानों में अवसर देखकर बड़ा परिवर्तन कर दिया, चूंकि उस समय उन जेलखानों की बड़ी बुरी अवस्था थी। एक ही कमरे में लगभग ३०० स्त्रियें अर्द्ध-नग्न अवस्था में बन्द कर दी जाती थीं

और उनकी कोई परवाह नहीं करता था। अस्तु।

परीक्षण के कारण ही हमारे सब काम सिद्ध होते हैं। एक ही अध्यापक द्वारा दिये गए ज्ञान से एक बालक का उत्तीर्ण होना और दूसरे का अनुत्तीर्ण होना उनके परीक्षण पर ही निर्भर है। अनुत्तीर्ण होने पर एक बालक को अपने अन्दर कम बुद्धि को समझना भ्रम है। यह अवश्य होता है कि किसी बालक की बुद्धि शीघ्र विकसित हो जाती है और किसी की देर में। उसमें चित्त न लगाने के कारण अथवा शिक्षा-प्रणाली में दोष होने से विद्यार्थी विद्याध्ययन में समुचित उन्नति नहीं कर पाते हैं। २ बालक को उसकी प्रवृत्ति के अनुसार ही कार्य में नियुक्त करना चाहिए। उसकी प्रवृत्ति के विपरीत लगा देना ही बालक को मूढ़ बना देता है। यदि किसी बालक की प्रवृत्ति शिल्प की ओर है तो उसे शिल्प की ही शिक्षा देनी चाहिए। शिल्प की शिक्षा न देने पर उसकी कोल्हू के बैल की तरह हालत होती है। जहां वह एक अच्छा शिल्पी बन सकता था

वहाँ वह अब किसी भी काम का नहीं रहता।
सब को कभी भी एक लाठी से नहीं हांकना चाहिए।
बालक की प्रकृति को देखना-: एक घर में नाना वस्तुएँ (बाजा, पुस्तकें, इत्यादि की चीजें) रखी गई हों और उसके अन्दर बालक को छोड़ दिया जाय। जिस ओर बालक की अधिक प्रकृति होगी वह उसी ओर जावेगा। बालक की प्रकृतियों को कभी भी नहीं दबाना चाहिए। यदि दबाया जावेगा तो वह जबरन उसी ओर जावेगा। किसी पिता का अपने पुत्र को अपना सा ही बनाने का प्रयत्न करना एक बड़ा भारी स्वार्थ है। प्रकृति एक से जैसे दो व्यक्ति कभी नहीं बनाती। प्रत्येक जन्म में वह अपने ढांचे को बदल डालती है। वही जादूभरा-सिक्का दूसरी बार काम में नहीं लाया जाता। गेलीलियो का पिता उसे डाक्टर बनाना चाहता था और जब उसे शरीर-शास्त्र की पुस्तकें पढ़ने पर बाध्य करता था तब वह उनके नीचे गणित की पुस्तकें छिपा कर बैठता था और चोरी से कठिन से कठिन प्रश्नों को हल किया करता था।

१८ वर्ष की उम्र में उसने गिरजाघर में पेण्डुलम के सिद्धान्त का आविष्कार किया। उसने दूरबीक्षण और सूक्ष्मवीक्षण ढूंढ कर मनुष्य जाति के ज्ञान और शक्ति को कई गुना बढ़ा दिया।

यदि किसी गाड़ी खींचने वाले घोड़े को घुड़दौड़ में शामिल करो तो कितना हास्यास्पद होगा? उससे कहीं अधिक हास्यास्पद बात हमारे दिमागों के विचार हैं। हम समझते हैं कि कानून, डॉक्टरी, और प्रोफ़ेसरी ये तीन ही कार्य हमारे युवकों के जीवन के लिए निर्दिष्ट की गई हैं। और क्या दूसरे धन्धे नहीं हैं? किसी देश के ८० प्रतिशत स्नातकों (ग्रेजुएटों) का कानून सीखने के लिए प्रविष्ट होना कितनी हंसी की बात है? कितने नवयुवक माता-पिता के धन्धे के बुरे नक्काल बनते हैं, कितने बुरे डॉक्टर और वकील होते हैं! देशभर में ऐसे नवयुवक भरे पड़े हैं जो कि निराश हैं, नष्ट हो रहे हैं, बेकारी में फंसे हैं, गरीब हो रहे हैं, भीख मांगने पर भी भूखों मर रहे हैं, साहस-हीन हो रहे हैं, तड़प रहे हैं, अगणित दुखों का बोझ ढो रहे हैं और ईश्वर

से जीवन-मुक्ति की प्रार्थना करते हैं। यह सब क्यों हो रहा है? क्योंकि वे अपने सच्चे कार्य को नहीं जानते। केवल नौकरी ही उनका लक्ष्य हो रहा है।

यही दशा स्वास्थ्य आदि की भी है।

बिना प्रवृत्ति देखे बालक को किसी कार्य में नियुक्त करना ~~करके~~ जहां उसकी बुद्धि को कुण्ठित कर देता है वहां उसे अस्वस्थ भी बना देता है। विशेषतया शिक्षा-प्रणालियों में यह दोष अधिक मात्रा में पाया जाता है। यदि किसी विद्यार्थी की गणित की ओर रुचि नहीं है तो यह कोई आवश्यक नहीं कि उसे गणित ही ~~कि~~ पढ़ाई जावे। लाख दण्ड देने पर भी वह वैसे का वैसा ही रहेगा। इस प्रकार उस विद्यार्थी का सारा जीवन नष्ट हो जाता है। वही लोहे का टुकड़ा तलवार बनने से और ठीक प्रकार रखा जाने से शीशे की भान्ति चमकने लगता है और वही लोहे का टुकड़ा लापरवाही से रखने पर जंगार के लग जाने से बुरा और तिरस्कार के समान दिखने वाला हो जाता है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य का जीवन है। कई लोग विद्या उपासनादि से अपनी बुद्धि को शीशे की तरह

चमका लेते हैं और कई लोग मरण-पर्यन्त ठूंठ के ठूंठ रह जाते हैं। इसे यदि हम एक शब्द में कहना चाहें तो इस प्रकार कह सकते हैं कि—परिश्रम अध्यवसाय का जीवन है— किसी मनुष्य के पास भारी धनाढ्यता का हो जाना उसके ज्यादा विद्याध्ययन का सूचक नहीं है अपितु आलस्य का सूचक है। वर्तमान समय में यदि ऐसे लोगों की सूचि तैयार की जावे तो बहुत ~~कम~~ ऐसे लोग मिलेंगे जो लखपति हैं किन्तु विद्या का उनमें सर्वथा अभाव है। उनके लिए धन का सदुपयोग करना तो दूर रहा किन्तु वे निर्धनों के घर में पड़े हुए अन्न को भी लेना चाहते हैं। यह बात उनके आलस्य और विद्या के अभाव की सूचक है। इसी लिए शास्त्रों में इतनी निन्दा की गई है।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि धन कमाना बुरा है। मनुष्य को विद्या का धनी होना चाहिए। इस विद्या रूपी धन को चोर चुरा नहीं सकते, राजा छीन नहीं सकता; आग जला नहीं सकती और जल गीला नहीं कर सकता। विद्या

का धनी होना उसके परिश्रम का सूचक है और यह धन ऐसा है जो कि दान देने पर बढ़ता है, घटता नहीं। विद्या के आने पर ऐश्वर्य का आगमन स्वाभाविक है। विद्या रूपी सूर्य के सम्मुख ऐश्वर्य टिमटिमाते दीपक के समान है। जैसे सूर्य के सम्मुख दीपक की कान्ति न होने के समान है उसीप्रकार विद्या के सामने ऐश्वर्य तुच्छ है। इसीलिए कहते हैं कि - 'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते'- यदि राजा करोड़पति है किन्तु विद्वान् के सामने वह भी तुच्छ है। इसीकारण प्राचीन समय में ब्रह्मचारी को इतनी प्रतिष्ठा थी कि यदि एक ही मार्ग पर ब्रह्मचारी और राजा आ रहे हों तो राजा को हट जाना चाहिए। विद्या मनुष्य के जीवनमार्ग को साफ सुथरा बना देती है। इसी कारण ब्रह्मशक्ति सर्वप्रथम है। यदि किसी राष्ट्र के पास क्षात्रशक्ति है और ब्रह्मशक्ति का अभाव है तो राष्ट्र कभी भी उन्नति नहीं कर सकता। ब्रह्मशक्ति के अभाव में क्षात्रशक्ति अन्धी है। यदि साथ में सुयोग्य विप्र भी होंगे तो उस पर कोई भी राष्ट्र विजय-लाभ नहीं कर

सकता है। राष्ट्र को सुगति देना विप्र का काम है। यदि राष्ट्र में अच्छे मेधावी लोग होंगे तो वह राष्ट्र कभी भी अवनति पथ की ओर नहीं जा सकता है। अस्तु-

प्रत्येक मनुष्य में कुछ पशुता भी होती है जो कि समुचित विद्याध्ययन द्वारा हटायी जा सकती है। विद्या से केवल यहां पर पुस्तकमय ज्ञान का तात्पर्य नहीं है किन्तु सभी प्रकार के ज्ञान इसके अन्दर आ जाते हैं। जो विद्यार्थी केवल पुस्तकमय ज्ञान को ही विद्या समझ लेते हैं उनके लिए दिल्ली दूर है ऐसा समझना चाहिए। अवनति में वे कभी भी उन्नति नहीं कर पाते हैं। पुस्तकों का ज्ञान हमारे अन्दर अज्ञान के पर्दे को हटाने में सहायक अवश्य है किन्तु वह हमें सभी प्रकार के ज्ञान करा देता है यह समझना मूर्खता है। पुस्तकों के अतिरिक्त भी बहुत ज्ञान है। जो विद्यार्थी पुस्तकों में ही उलझे रहते हैं वे जहां अपनी बुद्धि को कुण्ठित कर लेते हैं वहां अपना स्वास्थ्य भी नष्ट कर लेते हैं। इसी कारण वे किसी भी कार्य में सफलता

प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

विद्याध्ययन के लिए समय का समुचित प्रयोग करना अत्यावश्यक है। किन्तु जो बालक दिन रात एक करके पढ़ते हैं वे स्वयमेव ही रोगोत्पादक करने में सहायक बनते हैं। प्रत्येक वस्तु अपनी सीमा के अन्दर ही अच्छी लगती है। किन्तु सीमा के उल्लंघन करने पर वही लाभ-दायक वस्तु हमारे नाश का कारण हो सकती है। विद्यार्थी जीवन के लिए जितना पढ़ना आवश्यक है उससे कहीं अधिक खेलना आवश्यक है। किस बालक के माता-पिता चाहते हैं कि हमारा लड़का सुस्त पड़ा रहे। पढ़ना-लिखना-खेलना-कूदना-सोना-उठना आदि सभी चीजें यथासमय करने से ही उचित प्रतीत होती हैं। समय पर काम करना ही मनुष्य को मनुष्य बना देता है परन्तु जो बात आवश्यक है वह यह कि जो काम जिस समय की जाय तल्लीनता से की जाय और उस पर उतारू हो जाना हमारे लिए हानि-प्रद है।

यह एकाग्रभाव बहुत बड़ा मानसिक बल है। पढ़ने के समय खेलना और खेलने के समय पढ़ना मनुष्य को सर्वथा भुला देना चाहिए। इमरसन का एक वाक्य है जिसका अर्थ है कि—

"यदि जीवन में बुद्धिमानी की कोई बात है तो वह एकाग्रता है; और यदि कोई खराब बात है तो वह है अपनी शक्तियों को बिखेर देना। बहुचित्तता कैसी भी हो, इससे क्या? वही चीज़ अच्छी है जो हमारे खिलवाड़ और भ्रम की चीज़ों को दूर कर देती है और हमें हृदय से अपने काम को करने के लिए भेजती है।"

ओवन मेरेडिथ के एक वाक्य का तात्पर्य इस प्रकार है कि—' जो व्यक्ति जीवन में केवल एक बात ढूंढता है वह आशा कर सकता है कि जीवन समाप्त हो जाने से पहले वह उसे प्राप्त हो जावेगी"—।

एक कहावत है कि "जो नाविक अपनी यात्रा के अन्तिम बन्दरगाह को नहीं जानता

उसके अनुकूल हवा कभी नहीं बहती। एक बुद्धिमान शिक्षक कहता है कि युवावस्था में मैं सोचा करता था कि बादलों की गर्जन मृत्यु का कारण होती होगी परन्तु बड़ा होने पर मुझे पता चला कि मृत्यु का कारण बादलों का गर्जन नहीं है पर बिजली है। बस इसी दिन से मैंने गरजना बन्द कर दिया और चमकना शुरू कर दिया। अस्तु

जो बालक कभी भी समय पर काम नहीं करता वह अपनी कब्र अपने हाथों ही खोदता है। बड़ा होने पर जब वह बालक उन पुरानी घड़ियों को स्मरण करता है तो सिर-धुन रोता है। इस प्रकार वह अपने जीवन से भी निराश हो जाता है। चारों ओर उसे अन्धकार ही अन्धकार दिखाई पड़ता है। गीता में कहा है-

योगः कर्मसु कौशलम् -गीता २।५०

कर्मों में कुशलता का होना ही योग है। अर्थात् जो काम किया जाय वह उत्साह और तल्लीनता से किया जाय। इस प्रकार जो काम करता है वह योगी है। दिल लगाकर किए गए कार्य का कुछ अंश भी महत्व दीखने लगता है

और साथ ही मन भी प्रसन्न होता है।

संसार में ज्ञान की उत्पत्ति आश्चर्य से मानी गई है। जब भी कोई मनुष्य किसी वस्तु को देखता है या सुनता है और उसे नहीं जान पाता तो उसके मन में या तो आश्चर्य का भाव उदित होगा या उदासीनता का। बालक को उसके जानने में प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। यदि वह प्रयत्न नहीं होगा तो उसकी बुद्धि पर इसका असर आ जावेगा और वह समझने लगेगा कि मेरे अन्दर तो बुद्धि है ही नहीं। बिना प्रयत्न के काम का सिद्ध हो जाना मनुष्य को आलसी बना देता है।

योरुप कहता है कि 'प्राप्ति' नहीं प्रयत्न में आनन्द है। भारतवर्ष कहता है कि जिसे तुम प्राप्ति कहते हो, उसमें आनन्द नहीं मालूम होता है; चूँकि उस प्राप्ति में हमारे प्रयत्न का शेष नहीं है। वह 'प्राप्ति' हमें दूसरी 'प्राप्ति' की ओर घसीट ले जाती है जिसे हम परिणाम समझ बैठते हैं। अतः तुम्हारा आनन्द भी क्षणिक होता है। किन्तु हमारे

आनन्द चिरकाल तक स्थिर रहता है चूँकि उस प्राप्ति के पश्चात् प्रयत्न का शेष नहीं है।

उपरोक्त उदासीनता मनुष्य को गड्ढे में गिरा देती है और विद्या, उन्नति आदि सभी गुणों का बाधक है।

प्रत्येक अज्ञात वस्तु के विषय में हमारे अन्दर तर्क वितर्क होने लगते हैं — इसके गुण-दोष क्या है? यह क्यों कर बनी? इसके अस्तित्व का क्या कारण है? इससे क्या हानि व लाभ है? इत्यादि नानाविध प्रश्नों की हमारे अन्दर झड़ी सी लग जाती है और हम एक निश्चित स्थान पर नहीं पहुँच पाते हैं। यह सब कुछ हमें —— अध्ययन से ही ज्ञात होता है।

हमें बुरे से घृणा नहीं करनी चाहिए किन्तु बुराई से घृणा करनी चाहिए। प्रत्येक वस्तु के दो पार्श्व होते हैं-१ श्वेत पार्श्व २ कृष्ण पार्श्व। एक वस्तु से हम इसीलिए घृणा करते हैं चूँकि हम उस वस्तु के श्वेत (चमकीले) पार्श्व को नहीं देख पाते हैं। यदि हम उसी वस्तु के चमकीले पार्श्व को ध्यान-पूर्वक

देखें तो उसी में हमें गुण दिखाई देने लगते हैं। अतः जो लोग अज्ञान के साधन लोभ-मोहादि के कारण निन्द्य समझते हैं उन्हीं की आन्तरिक अवस्था का सम्यग्तया देख-भाल करने पर हमें उन्हीं के अन्दर गुण दिखाई देने लगते हैं।

जो यह कहता है कि अमुक पदार्थ खराब है अथवा अमुक जन अश्लाघ्य है समझ पड़े तो यह समझना चाहिए कि मेरे अन्दर ही कोई दोष है न कि उस पदार्थ अथवा उस जन में। एक ही वस्तु को यदि कोई खराब कहता है तो उसी वस्तु को कोई दूसरा अच्छा कहता है। वास्तव में वह वस्तु न अच्छी है और न ही खराब है। केवल उसके समझने में अन्तर है। जैसे कि विदेशी समालोचकों ने कहा है कि – "रामायण में कवि वर्णन अप्राकृतिक और अनुरञ्जित हो गया है। उनको यह कहा जा सकता है कि प्रकृति भेद से जो वस्तु एक के लिए अप्राकृतिक है वही दूसरे के निकट प्राकृत है। भारतवर्ष नहीं देखता कि रामायण में अप्राकृतिक की अधिकता है।" इसप्रकार

से कवीन्द्र रवीन्द्र ने 'प्राचीन-साहित्य' नामक पुस्तक में उसका खण्डन किया है।

एक व्यक्ति किसी काव्य में इतना तल्लीन हो जाता है कि उसे खाने-पीने की भी सुध नहीं रहती और कोई दूसरा व्यक्ति उसी काव्य में सरसता नहीं ले पाता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि अमुक काव्य खराब है। किसी वस्तु के गुण-दोष निकालना प्रत्येक की अपनी 2 समझ पर निर्भर है।

अध्ययन किस प्रकार करना चाहिए?—

यह एक प्रकार के भोजन के समान है। जैसे अधिक भोजन खा लेने पर अपच्य और सर्वथा भोजन का परित्याग करने पर मृत्यु की सम्भावना होती है उसीप्रकार बहुत ग्रन्थावलोकन से वह मनुष्य उसे आत्मीकरण नहीं कर सकता और सर्वथा न पढने से वह ठूंठ रह जाता है। किसी वस्तु की अति का दोष मनुष्य के अधःपतन का कारण बनती है। इंगलिश का एक वाक्य है—

Avoid the exchreames follow the golden mean

अर्थात् – 'अतियों को छोड़कर मध्यमार्ग का अनुसरण करो'। मनुष्य को सदा समन्वय की स्थिति में रहना चाहिए इसके आगे और पीछे दोनों ही ओर विनाश विद्यमान रहता है। किसी ने कहा है कि- "अधिक ज्ञानी और बिलकुल ठूंठ आदमी की एक ही स्थिति है चूंकि दोनों ही प्रान्त भाग पर स्थित है"- न जाने कब किसका पतन हो जाय। वर्तमान समय में योरुप ने इतनी उन्नति कर ली है कि उसका अवनत होना आवश्यक है। एक पक्षी जो कि अपनी चिता स्वयमेव तैयार करता है और अपने जीवन की अन्तिम घड़ियों के राग अलापता रहता है उसकी न्याईं योरुप की हालत है। योरुप ने स्वयमेव अपनी चिता बनाई है। अन्तर केवल इतना है कि उस पक्षी की चिता लकड़ियों की बनी होती है किन्तु योरुप की चिता तोप, वायुयान, बमें इत्यादि की बनी है और अपने विनाश के राग आलाप रहा है। अतः मालूम पड़ा कि अन्वय और प्रतिबन्ध दोनों ही हानि के कारण हैं और समन्वय को ही अपनाना चाहिए।

जो लोग अधिक ग्रन्थावलोकन करके पुस्तके लिख देते है ऐसे लोगो की सम्मतियाँ उनकी अपनी नही होती वरन् अन्य ग्रन्थों से उधार ली हुई होती हैं। इसी कारण वे उनको अपना (आत्मीकरण) नही सकते है। अपने आप खोज की हुई वस्तु अपनी बन जाती है। इसप्रकार जब लोग पराये सिद्धान्तों को अपने कथनों में दूसरे प्रसङ्ग से प्रयुक्त करते हैं और जब उनका सम्यगतया निरीक्षण किया जाता है तो उनका एक 2 अक्षर भूसी के समान उड़ जाता है और मन भर गट्ठे में से एक दाना भी नही निकल पाता है। यदि किसी की भी कोई वस्तु लेनी हो तो सबसे पहले उसे अपनाना चाहिए और जब वह अपनी बन जाय तब उसे प्रकाशित करना चाहिए। अन्यथा लोग उसकी बात को अनसुनी करके टाल देते है। इससे जहा उस बात की निन्दा होती है तो साथ ही उसके प्रकाशित करने वाले की भी निन्दा होती है। अत जो बात कही जाय खूब सोच समझ कर कही जाय। अर्थात् मनुष्य को उचित है

कि वह जब भी किसी के सारगर्भित वाक्य को पावे तो उसे प्रयुक्त करने से पूर्व अच्छी प्रकार मनन कर लेना चाहिए कि वह कितनों के प्रतिकूल और कितनों के अनुकूल पड़ता है। बिना सोच-समझकर बात को कहने वाले जन कभी भी सफल नहीं हो सकते हैं। इसप्रकार नवीन और प्राचीन विचारों में थोड़ा सा भी विरोध होने से ध्यानपूर्वक निर्णय करके संशोधन कर लेना चाहिए। जब नवीन और प्राचीन विचारों का ध्यान-पूर्वक निर्णय कर लिया जाता है तभी कहा जा सकता है कि कुशल विचार अब अपना हो गया। यदि इसप्रकार ध्यान किया जावेगा तभी एक मनुष्य उन्नति कर सकता है अन्यथा उसके कथनों में मूर्ख-मोहिनी विद्या रह जावेगी। अतः प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह जो भी बात कहे उसके कहने से सर्वप्रथम उसे अच्छी प्रकार नाप-तौल (मनन कर) लेना चाहिए।

अध्ययन दो प्रकार का होता है -

१ स्वावलम्बी २. दैनिक व्यापार सम्बन्धी।

मानसिक उन्नति के लिए साधारण शिक्षा की अपेक्षा व्यापारिक शिक्षा कम श्रेष्ठ है। अर्थात् जब तक हम अपनी साधारण शिक्षा को उन्नत नहीं करेंगे तब तक हम व्यापार में सफलता नहीं प्राप्त कर सकते हैं। संसार में यदि कोई सबसे अधिक असाधारण वस्तु है तो वह साधारण-शिक्षा है। जिसने साधारण-शिक्षा प्राप्त कर ली है उसके लिए अप्राप्य चीजें भी प्राप्य के समान हो जाती हैं। बिना साधारण शिक्षा प्राप्त किये जो मनुष्य व्यापारिक शिक्षा सीखने का प्रयत्न करता है वह अमूल्य वस्तु को भी खो बैठता है। प्रत्येक व्यापार में ऐसी बुराइयाँ होती हैं जो कि मानसिक उन्नति के लिए बाधक होती हैं और उन्हें हटाने के लिए साधारण शिक्षा का होना अत्यावश्यक है। साधारण-शिक्षा के अभाव में व्यापारिक शिक्षा का सीखना असम्भव है। जैसे दूसरी सीढ़ी पर चढ़ने के लिए प्रथम सीढ़ी पर चढ़ना आवश्यक है उसी प्रकार व्यापारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए साधारण-शिक्षा का प्राप्त करना अत्यावश्यक है।

प्राय देखने में आता है कि जो लोग व्यापार में पड़ते हैं वे कई बार सभा-सोसाइटी में ऊँट-पटांग बातें कर देते हैं। यह उनके साधारण शिक्षा के अभाव को बताता है। चतुर मनुष्य को अवकाश के समय ऐसे विषयों की ओर चित्त लगाना चाहिए जिनकी उसके व्यापार सम्बन्धी आह्निक कर्तव्यों में कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

चतुर व्यापारी वही हो सकता है जिसने कि साधारणशिक्षा का सम्यक्तया अध्ययन किया हो। ऐसा व्यक्ति व्यापार में कभी भी हानि प्राप्त नहीं कर सकता है। इसप्रकार ग्राहक भी नाराज़ नहीं होने पाता और व्यापारी का कार्य भी सिद्ध हो जाता है। वर्तमान समय में व्यापारियों को क्यों लाभ नहीं होता? इसका भी मुख्य कारण यही है। माता-पिता बचपन में भी अपने बच्चों को दूकानों पर बैठा देते हैं और उनका अमूल्य जीवन बरबाद कर देते हैं। अच्छा वैश्य वही है जिसने व्यापारसम्बन्धी शिक्षा के साथ साधारणशिक्षा प्राप्त की हुई हो। एकराष्ट्र

से जहां उत्तम ब्राह्मण और उत्तम क्षत्रिय हो वहां साथ ही उत्तम वैश्यों का होना भी आवश्यक है। राष्ट्र की आर्थिक दशा इन्हीं के हाथों में होती है। जिस राष्ट्र के लोगों को पेट भर भोजन नहीं मिलता वह राष्ट्र क्या कभी अपनी उन्नति के स्वप्नों को देख सकता है? मैं कहूंगा - कदापि नहीं। जब तक पेट में भोजन न पड़े तब तक ब्रह्मशक्ति और क्षात्रशक्ति का होना असम्भव है। अतः किसी भी राष्ट्र में उत्तम वैश्यों का होना आवश्यक है और उत्तम वैश्य वही हो सकते हैं जिन्होंने व्यावहारिक शिक्षा के साथ साधारण-शिक्षा का अध्ययन किया हो।

अध्ययन का फल दो प्रकार का होता है- स्वावलम्बी और परावलम्बी। ये दोनों ही शब्द अपने भाव को स्वतः स्पष्ट कर रहे हैं।

जो अध्ययन अपने अनुभवों द्वारा प्राप्त किया जाता है वह स्वावलम्बी ज्ञान कहलाता है और जो ज्ञान गुरुओं, पुस्तकों और मित्रादि से प्राप्त किया जाता है वह परावलम्बी ज्ञान कहलाता है।

बिना स्वावलम्बी ज्ञान के केवल

परावलम्बी अध्ययन से पूर्ण मानसिक उन्नति नहीं हो सकती। यदि कोई मनुष्य चाहे कि मैं अपने अनुभवों से ही मानसिक उन्नति कर लूं, असम्भव है। जब तक गुरुजनों और मित्रादि के पास जाकर, उनसे अनुभव प्राप्त नहीं किये जावेंगे तबतक मानसिक उन्नति नहीं हो सकती।

दोनों प्रकार के अध्ययनों में कथनादि भाग पर विशेष ध्यान देकर और प्रत्येक वस्तु को ध्यानपूर्वक देखकर अथवा सुनकर वस्तुओं से उनकी समता और विषमता पर पूर्ण विचार करना चाहिए। बिना देखे और सुने किसी वस्तु पर समालोचना करना अपनी मूर्खता का परिचायक है। इसप्रकार बार २ चिन्तन करके हम उस वस्तु के विषय में विस्तीर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। बार २ अभ्यास करने पर एक अउन्नति मनुष्य भी सुशिक्षित हो सकता है।

एक ज्ञान को स्थिर करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है- श्रवण-मनन-निदिध्यासन। इनसे क्रमशः ज्ञान पक्का और पक्का होता जाता है और मनुष्य विस्तीर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है। पहले कहा जा चुका है कि ज्ञान अनन्त है। मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाता है किन्तु यह ज्ञान

समाप्त नहीं होने पाता।

संसार में हम देखते हैं कि प्रत्येक वस्तु की बनावट में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य है। यहां तक की कि पत्ती २ की भी रचना में भी भिन्नता दिखाई पड़ती है। यह भिन्नता सूक्ष्मदर्शिता से ही प्राप्त हो सकती है। जब तक किसी वस्तु का मूलकारण पता न हो तब तक हम उस वस्तु के विषय में समग्रतया प्रवेश नहीं पा सकते हैं। जब हम किसी वस्तु के अन्दर पूर्णतया प्रवेश पा जाते हैं तो वह वस्तु हमारी हो जाती है। अत ज्ञानवृद्धि के लिए प्रत्येक वस्तु के मूलकारण को उपलब्ध करना परमावश्यक है।

बाह्य-ज्ञान की अपेक्षा अपने आप को जानना अधिक श्रेष्ठ (श्रेष्ठतर) है। किन्तु अपने आप को जानने के लिए अध्ययन का होना आवश्यक है। अध्ययन मनुष्य को मंजिले-मकसूद पर पहुंचाने के लिए सीढ़ी का काम करता है। जब हमारा सीढ़ी पर पैर जम गया तो उसे लांघना कुछ भी मुश्किल नहीं है। अध्ययन के द्वारा मनुष्य को मालूम हो जाता है कि मैं कितने गहरे पानी में हूं। इस-प्रकार वह कामादि शत्रुओं से अपने आप को विच्छिन्न

करने का प्रयत्न करता है। और जब वह इतनी ऊँची स्थिति में पहुँच जाता है कि किसी प्रकार भी डिगने नहीं पाता तो उस अवस्था का नाम 'आत्म-ज्ञान' है। आत्मज्ञान कर लेने पर वह साम्यावस्था को प्राप्त कर लेता है। उसके अन्दर अध्ययन का एक बड़ा हाथ है। इसप्रकार त्रिविध दुःख के नाश हो जाने पर मनुष्य मुक्त हो जाता है।

ऊपर कहा है कि ज्ञान वृद्धि के लिए प्रत्येक वस्तु के मूलकारण को जानना परमावश्यक है। अत हम जहां भी कहीं जावें - अजायबघर - चिड़ियाघर - जंगल - उद्यान मैदान - ग्राम - नगर - पत्तन - झील - समुद्र नदी - नाले - पहाड़ आदि चीजों को ध्यानपूर्वक देखें और विचारना चाहिए कि किस प्रकार - क्यों - इनका निर्माण हुआ है। इसप्रकार यदि हम प्रत्येक वस्तु की गहराई में जाकर देखेंगे तो हम उनके विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेंगे।

प्राचीन समय में ज्ञान के इतने साधन नहीं थे जितने कि आधुनिक-युग में हैं। इतना होते हुए भी ऋषियों को हमारी अपेक्षा अधिक ज्ञान था। यह युग परिश्रम का युग नहीं, किन्तु आलस्य का युग है।

रेलगाड़ी-मोटर वायुयान आदि के आविष्कारों से हम अधिक प्रमादी तथा समय को नष्ट करने वाले बन गए हैं। यही कारण है कि इतने साधनों के होते हुए भी हम अपने को उन्नत नहीं कर सके हैं।

परावलम्बी - ज्ञान की प्राप्ति के लिए हमें गुरुओं, मित्रों, पुस्तक आदि से सहायता लेनी चाहिए। यदि कोई बात ज्ञात न हो तो उसके पूछने में कभी भी संकोच नहीं करना चाहिए। कोई उच्चग्रन्थ अथवा समाचार-पत्र पढ़ते समय 1 पेंसिल, 1 नोटबुक और एक जेबी कोष का होना आवश्यक है। जहां पर भी हमें कोई नई बात सूझे उसे रेखांकित कर लेना चाहिए। यदि कोई उच्च ग्रन्थ दुबारा आवृत्ति करने के योग्य हो तो उसकी दुबारा क्या तिबारा भी आवृत्ति कर लेनी चाहिए।

कुछ भी पढ़ते समय मनुष्य को अपनी विशेषता का ध्यान रखना चाहिए। अपने ऊपर उचित मात्रा से अधिक विश्वास और अविश्वास कभी भी न करना चाहिए, चूंकि ये दोनों ही निष्फलता के मूलकारण हैं। किसी महापुरुष के

जीवन-चरित्रों से अच्छे उदाहरणों को लेकर हम अपने जीवन में उन्हें ढालकर लाभ उठा सकते हैं। ये जीवन-चरित्र हमारे जीवन बनाने में सहायक होते हैं। कोई देश अथवा राष्ट्र यदि उन्नति कर सकता है तो वह भी महापुरुषों के जीवन-चरित्रों से कर सकता है। साथ ही ~~महापुरुषों~~ मनुष्य को किसी न किसी कला का भी ज्ञान होना चाहिए-हारमोनियम- ~~की~~ सितार- हॉकी आदि। कुछ भी कला न जानने वाला मनुष्य समाज में आदर प्राप्त नहीं कर सकता है। बहुत से लोग कलादि की निन्दा भी करते हैं। इनकी वृद्धि अवश्य होनी चाहिए किन्तु साथ में इन्द्रियसंयम पर भी पूर्ण ध्यान रखना चाहिए और इसी में ही सच्चा आनन्द है।

राजहंस



राज

साम्यवाद के पक्ष में —

मेरे प्यारे दोस्तो।

किसी शायर ने कहा है —

'अगर फिरदौस बरुए ज़मीनस्त,
हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त ॥'

—और हमारे हिन्दू भाई भी गाया करते हैं —

'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।'

और इसके साथ ही —

'जग बिच स्वर्ग हमारो देश।'

लेकिन मैं अभी कलकत्ते से आ रहा हूं। मैं आपको वहीं का एक वाकया सुनाता हूं।

एक दिन मैं सवेरे घूमने निकला। प्रातःकाल का वह सुहावना समय। बहती हुई मन्द मन्द शीतल हवा। दिन के कोलाहल से दूर, शान्ति, सुनसान

और आत्मा के पक्षी को उन्मुक्त होकर उड़ने के लिये खुला आकाश। मैं विचार मग्न सा चला जा रहा था। सामने क्या देखा कि सड़क के बीचों बीच एक अर्ध नग्न स्त्री लेटी हुई है। उसकी बेहयाई पर मुझे हैरानी हुई। उसकी छाती पर एक बच्चा लेटा हुआ था जिसके मुख में स्तन का अगला भाग बन्द था। मैंने अनुमान लगाया — कोई भिखारिन होगी, रात को और कहीं जगह न मिलने के कारण सड़क पर ही पड़ गई होगी वहीं उसे नींद आ गई और उसका बच्चा भी दूध पीते २ उसकी छाती पर ही सो गया।

मैंने सोचा चलो जगादूं — दिन ~~चढ़ रहा~~ चारों ओर चल रहे हैं और भी जाने वाले घूमने के शौकीन अब इधर आयेंगे और इस प्रकार इसकी नग्नावस्था को देखकर क्या कहेंगे।

पास पहुंचा। हिलाया। फिर हिलाया। सोचा-शायद गहरी नींद हो। पर तब भी कोई परिणाम न निकलता देखकर मुझे गुस्सा आया और गुस्से में एक जोर से मैंने उसे झकझोर दिया। उसके अगली क्षण वह दोनों मृतक हैं यह देखकर भाग कर मैं चुपचाप अपने रास्ते पर चलने लगा

का जाता, परन्तु न जाने कहाँ से मुझे कुछ तकलीफ़ का आभास-सा हो गया। बार बार हिलाने पर भी जब वह न हिली, न डुली, और मैंने उसकी आँखों को देखा कि वे जितनी देर से खुली थी खुली हैं, तो सहसा ही जिन्दगी की कल्पना करके मैं स्तब्ध रह गया। ओह! अब अगर दो तीन बार तो क्या, अगर हजार बार हिलाने पर भी यह लौट न जाग सकेगी? वह शैशव अगर फिर उन खिलखिलाहटों में आ सकेगा? जिस दुनिया में पहुँच कर फिर कभी कोई लौटता नहीं, उस दुनिया से क्या वो किसी तरह लौट सकेगी!

मैं रो पड़ा।

ओ मेरे देश के शासको! और धनिको! तुम्हारे पास खाने को काफी है, और फुरसत भी काफी है—तुम्हारा पेट ऊपर तक भरा हुआ है, बताओ। इस गरीब हृदय को देखकर भी क्या तुम कहोगे — '[illegible] प्यारे देश।' ओह, जिस गरीब देश के अन्दर किसान लाखों माताएँ अपनी जवानियाँ इसी प्रकार शिशुओं को खोकर महाकाल की पथ पर चल पड़ती हैं उनके लिये क्या अब भी तुम कहोगे —

'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।'

और इसके साथ ही मुझे याद आती है एक ग्रामीण की घटना। मेरी आँखों के सामने आती एक स्त्री नाच रही है जो तीन दिन से भूखी है। लगातार तीन दिन तक पेट में कुछ भी न पड़ने के कारण उसके पैर लड़खड़ाते हैं, ठीक तरह चल भी नहीं पाती। लेकिन उसके अचानक सामने गोबर का ताजा किया हुआ गोबर पड़ा हुआ दिखाई दिया। उस गोबर में उसे कुछ अनाज के दाने दिखाई दिये, वह झपटी और दौड़ कर गोबर में से उन अनाज के कतिपय दानों को चुग-चुग कर खाने लगी।

मनुष्यता की इस दयनीय दशा को देखकर मैं और देर तक खड़ा न रह सका।

और फिर मुझे उस दिन की घटना याद आती है— जब सूरज डूब चुका था और गांव की उस तंग गली में झुटपुटा सा छा रहा था। मैं भी तेजी से कदम रखता हुआ उसी गली में जा रहा था कि सहसा मुझे किसी ने मुझे कदम रोक के कहा— "बाबू जी! आगे न बढ़िये। थोड़ी देर ठहरिये।" मैंने ठहर कर पूछा— क्यों भई! माजरा क्या है?"

उस ग्रामीण ने उत्तर दिया — "और तो कुछ

नहीं वहाँ गली के मोड़ पर मेरी बकरी चर रही है।"
मेरे आश्चर्य की हद न रही। भला यह कोमल नहाने का समय है? और वह भी ठीक गली के बीच में। क्या इसे कोई स्थान था नहीं था, जो इस प्रकार यहाँ पूर्ण बीच मार्ग में रोक कर व्यर्थ में तंग किया। उस ग्रामीण ने शान्त भाव से उत्तर दिया — "बाबू जी, हम लोगों की गरीबी को आप क्या जानें। अब मेरी स्त्री को बिना नहाये १५ का दिन है। वहाँ क्या तालाब कोई है नहीं और उसके पास दूसरी कोई धोती भी नहीं थी कि वह उसे पहनकर नहा सकती। इसीलिये जब धूप और अंधेरा होगया कि ही की तरह का भय न रहा तब अब वह बगली के मोड़ पर नंगी होकर नहा रही है।' — और इसके १ मिनट बाद ही उसकी आँखों से दुनिया की सबसे अमूल्य चीज — जिसे हम और आप 'आँसू' कह कर पुकारते हैं — निकल पड़ी। मैं स्तब्ध रह गया।

— हाय। मैं उस इतने लम्बे चौड़े देश में इतनी गरीबी है। यह तक उदाहरण हूँ? शुरू से लेकर आखिर तक यही करुण कहानी चलती है। सुनने वालो। तुम सुनना चाहते हो? लो सुनो — एक नहीं, दो नहीं, हजारों

पढ़ाते थे तो सब आँखों के सामने कटते हैं, पर
एक हम हैं जो इस इतने नरक लोक के भीतर भी अनन्त
बने रहते हैं और जोर-जोर से चिल्लाते हैं —

'जय हिन्द स्वर्ग हमारा देश।'

अरे। क्या स्वर्ग में इतनी गरीबी हो सकती है? जहाँ और देशों में 'मक्खन के साथ रोटी खाना', गरीबी का प्रकाशन करने के लिए एक लाख रुपये वार्षिक प्रबन्ध किया जाता है, वहाँ इस देश में तो मक्खन और रोटी बड़े बड़ों को भी नसीब नहीं होता। अब तो घर की ज्वाला इस अभागे हिन्दुस्तान में धाँय-धाँय करके जल रही है, उतनी भयानक ज्वाला तो नरक में भी नहीं जलती होगी, और इस नरक से भी बदतर देश को तुम स्वर्ग कहते हो, तुम्हें शर्म है। बताओ—कहाँ है स्वर्ग?

लेकिन, नहीं। तुम सच, इसे स्वर्ग तुम कहो। क्योंकि मैं जानता हूँ — तुम्हारा घर भरा हुआ है, जो तुम्हारी कमाई अप्राकृतिक होती है, इसलिए नौकर-चाकर हाथ बाँधे तुम्हारे हुक्म की प्रतीक्षा में खड़े हैं, और यह इतना अन-का वैभव मिला क्या है कि तुम तो हर जगह स्वर्ग ही स्वर्ग देखते हो। मीठी नींद में सुख तुम्हारी आँखों को

इस दुनिया का आखरी चित्र — जो कि यहां दिखेगा। अपने महल के नीचे पड़ी हुई झोंपड़ी तुम्हें नहीं दिखेगी। तुम नहीं जान पाओगे कि तुम्हारे इस सुन्दर विलास-गृह की नींव में कितने गरीबों के गरम खून से उनकी हड्डियों, का ~~[illegible]~~ पीस पीस का बनाया हुआ गारा काम में लाया गया है। अरे इन ऊंची अट्टालिकाओं के अहंकार के सामने ~~तुम्हें~~ तुम्हें उस नन्ही गरीब झोंपड़ी का रुदन-क्रन्दन क्यों और कैसे सुनाई देगा? कैसे सुनाई देगा तुम्हें? क्यों कि तुम्हारे कानों में रुई भरी हुई है और तुम्हारा दिल भरा हुआ है।

एक ज़माना था जब दुनिया में हिन्दु और मुसलमानों की तथा ईसाई और यहूदियों की लड़ाई हुआ करती थी। एक धर्म को मानने वाला दूसरे धर्म वाले के साथ लड़ मरने को तय्यार रहता था। पर अब वह ज़माना चला गया। अब किसी हिन्दू और मुसलमान की लड़ाई नहीं है। अब दुनिया में कोई ~~धर्म~~ सम्प्रदाय नहीं है। अब तो दुनिया में केवल दो वर्ग हैं — पूंजीपति और प्रोलेटेरियट — और

आज इन्हीं दो वर्गों की लड़ाई है। क्यों? इसका कारण मैं आपको बताता हूं। —

आपने कितनी बार भिखारियों को स्टेशनों पर और बड़े बड़े शहरों की सड़कों पर कुत्तों के मुंह से कौर छीनकर खाते देखा है? वे ऐसा क्यों करते हैं, क्योंकि उन्हें रोटी नहीं मिलती। रोटी क्यों नहीं मिलती? क्योंकि पूंजीपति उनकी रोटी छीन लेते हैं। सोचिये तो सही, यह कितनी दिलचस्प हालत है कि एक किसान जो सर्दी-गर्मी बरसात में अपना खून पसीना एक करके अनाज पैदा करता है, पर वह सारा चला जाता है जमींदार के घर। पैदा कोई करे और खाए कोई और? और। कितनी विडम्बना है। एक के पास इतना पड़ा पड़ा है कि आगे सौ पुश्त बैठे ही खा सकते हैं, पर एक बेचारा ~~झोंपड़ी~~ ऐसी टूटी फूटी झोंपड़ी भी नसीब नहीं जिसमें एक रात के लिए भी आराम हो। मिल-मजदूरों के वे लड़के-बच्चे जब देखते हैं, वे क्या मुंह से पालकियों से कुछ देखता है? और एक के पास इतना आता है कि वह नहीं जानता कहां कैसे खर्च करे, पर दूसरा अपनी साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भी वंचित रहता रही पाता। ~~[illegible]~~ एक अजीब और पागलपन का ~~[illegible]~~ है।

अफ़सरों की कमाई सब सामान बढ़ भी रहा है, पर सच है कि कि बहुत दिन रुपये का भरपेट रोटी भी मिल जाती है तो वह उस दिन को धन्य समझता है। कलकत्ता में लाखों मन गेहूं इसलिए जला दिया जाता है कि उसकी कीमत बाज़ार में गिर गई है, पर यहां लोगों को अनाज का दाना ढूंढने तक को नहीं मिलता। और इससे बढ़कर विडम्बना और क्या होगी कि जहां कामदार को 25000) मासिक वेतन मिलता है वहां उसके आदमी को कुछ भी नहीं मिलता। क्यों? क्या किसानों के आवश्यकताएं नहीं हैं? क्या वह भी कामदार की तरह एक जीता-जागता मानव जीवन की आवश्यकताओं को अनुभव करने वाला मनुष्य नहीं है? तो फिर इतना अन्तर क्यों है? हां, योग्यता का कुछ अन्तर तो मानना ही पड़ेगा, पर इतना अन्तर तो मनुष्य और पशु में भी नहीं है कि मनमाने एक को 25000) मिलें और दूसरे को कुछ भी न मिले।

समाज में इतना वैषम्य क्यों है? क्योंकि मालिक लोग अपने नौकरों को आदमी न समझकर पशु समझते हैं। मिल मालिक समझता है कि जिस प्रकार कोल्हू का बैल दिनभर कोल्हू में जुता रहता है, उसी प्रकार मज़दूर

मज़दूर को भी दिनरात काम पर जुटे रहना चाहिये। अर्थात, जिस प्रकार मिल मालिक को खाने-पीने पहनने के लिये अन्यान्य साधनों की आवश्यकता है, उसी प्रकार मज़दूर भी एक काम करने के लिये आवश्यक साधन है। क्योंकि अकेला मालिक अपनी अकेली देह से सब काम नहीं कर सकता और सब जगह उपस्थित भी नहीं हो सकता। फलत: उसे नौकरों की आवश्यकता होती है। पर अपनी ही तरह नौकरों के भी पेट है, इस बात को वह नहीं समझ सकता, क्यों-कि उसके लिये तो मज़दूर और बैल में कोई अन्तर है ही नहीं। मज़दूर सिर्फ दो टांग वाला बैल है। और यही कारण है कि इस समय प्रति दिन हड़तालें होती हैं, सत्याग्रह होते हैं, मज़दूरों के जलूस निकलते हैं और मज़दूर मालिकों के प्रति अपना असन्तोष प्रकट करते हैं। मैंने कहा न — कि अब तो सिर्फ दो वर्ग हैं — पूंजीपति और मज़दूर, और अब सारी दुनिया में इन्हीं का संघर्ष चल रहा है।

इस सामाजिक वैषम्य को दूर करने का

उपाय क्या है? इस भयंकर गरीबी को मिटाने का तरीका क्या है? इन पूंजीपतियों के दिनपर दिन बढ़ते हुए अत्याचार को रोकने का इलाज क्या है? क्या आप मुझसे पूछते हैं। यदि मुझसे पूछते हैं तो मैं आपको बताऊंगा कि इन सब खराबियों का एकमात्र इलाज है — 'साम्यवाद।'

मैं जानता हूं कि यहां कुछ ऐसे महानुभाव विराजमान हैं जो साम्यवाद का नाम सुनते ही नाकभौं चढ़ाते हैं उन्हें इस नाम से ही चिढ़ लगती है। वे समझते हैं कि इसमें न जाने कौनसा हौआ छिपा बैठा है जिस के आते ही एकदम क्रान्ति मच जायेगी। सच तो यह है कि साम्यवाद से उन्हें आतंक होता है जिन्हें अपनी सम्पत्ति के छिनने का और जायदाद के जब्त होने का डर है, जिन्होंने अबतक गरीबों का खून चूस चूसकर और उनका पेट काट काट कर अपनी तोंद बढ़ाई है और झोपड़ियों के कब्र पर अपने बड़े बड़े महल खड़े किये हैं। [जनता में से आवाज आती है—

"तो फिर यह माला और टोपी और कुर्ता पाजामा तुम्हें कहां से आया? तुमने खुद भी तो गरीबों को [illegible]

यह सब क्या है न।" – इस पर उत्तर मिलता है–] शायद आप लोग पूछते हैं कि यह माला कहाँ से आई? यह टोपी कहाँ से आई? और। आपको पता होगा। इस माला पर हमारा क्या अधिकार है? आज जब हम गरीबों के लिये हाथ में तलवार लेकर और सिर पर कफन बाँधकर दुनिया में अन्याय, अत्याचार और गरीबी के विरुद्ध बगावत करने के लिये खड़े हुए हैं — तो यह फूलों की माला कैसी? समझिये, यदि आपने आज इस माला को हमने स्वीकार किया होता [illegible] यह चुल्लू भर पानी में डूब मरने की बात थी — कहाँ हम राजसा- म्राज्य के लिये तो। लेकिन, यह तो आपके ही हाथों द्वारा चढ़ाये हुए कुछ श्रद्धा के फूल हैं, और उन श्रद्धा के पुष्पों को अस्वीकार करके मैं आपका अपमान नहीं कर सकता। परन्तु, फिर भी यह आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपके द्वारा दिये हुए इस सम्मान को भी जिस भाव आप कहेंगे, मैं उसी भाव लौटाने को तैयार हूँ। एक यह तरह की फूलों की माला भी हमें अपने उद्देश्य से विचलित नहीं कर सकती। यह सोचिये, आपकी चीज आपको ही समर्पित है।

माली ओ वनमाली

सींच रक्त से अभिमान-भ्रम से,
कर प्रतिपल रखवाली।
बड़ा किया था जिस उपवन को,
तूने ओ वनमाली॥
आज वही हो नीरस सूखा,
जर्जर नग्न भिखारी।
देख रहा है अपलक दृग से,
फिर से और पुजारी॥

बाल तुम्हें पाला था तुमने,
उपवन ए। वनमाली।
पाला तुमने, फूल नहीं थी
उपवन डाली डाली॥
फिर ना जाने क्यूँ हो र
नहीं दिखी भी डाली।

ਸੂਰਜ ਗਯਾ ਚੜ੍ਹ ਤਪਣ ਦੇਰਾ;
ਸੂਰਜੀ ਡਾਲੀ ਡਾਲੀ ॥

ਸੂਰਜੀ ਡਾਲੀ ਪੀਰਜ ਤਣੀ ਚੜ੍ਹ,
ਤੇ ਮੇਰੇ ਵਣ ਮਾਲੀ ।
ਪਿਤਾ , ਪਿਤਾ ਤੇ ਪਿਤਾ
ਕਰੋ ਤਾ ਫਿਰ ਮੇਰੀ ਰਖਵਾਲੀ ॥
ਦੇਖਾ ਪੀਰਗਾ ਚੜ੍ਹ ਪਾ ਫਿਰ ਜੀ,
ਤੁਸਾਂ ਜਾਣ ਨਹੀਂ ਜ਼ਾਰਾ ਲੀ ।
ਸਿਮਸਿ ਤੁਸਾਂ ਪਹਿਲੇ ਦੇ ਜੀ;
ਅੰਖੀਆਂ ਨੂਰ ਦੂਰਾ ਲੀ ॥

ਗੜ੍ਹਾ ਤਾਕਰ ਤਲੇ ਕਰ ਪੁਕਰੀ,
ਤਕ ਦੇ ਜੀਵਨ ਮਿਹਰਬਾਨੀ ।
ਜੋੜ ਦਿਆ ਤਕ ਜੋ ਰਚੁਨਾ ਜੀ;
ਜੋੜੀ ਕੁਦਿਆ ਸਾਰੀ ॥
ਜੀਵਨ ਨਈ ਚੀ ਹਰਨੇ ਕੋ ਦੁਕ-
ਚੜ੍ਹ ਜੀ ਨੂਰ ਦੂਰਾ ਲੀ ।

राजहंस

वत्स बचाने आओ अबलो,

बस तुम ही वनमाली ॥

सम्पादकीय

सहृदय पाठकगण,

आज आप लोगों के सम्मुख राजहंस का द्वितीय अङ्क, सामो- [illegible] रूप में प्रकाशित करते हुए हमें विशेष हर्ष हो रहा है। इस अङ्क में सब चीजों का समावेश है, अर्थात् कवितायें - गल्प - लेख - कथा - कहानी आदि सब कुछ है। इस में यद्यपि कथा - कहानियों तथा गल्पों की संख्या अत्यन्त अल्प है किन्तु फिर भी हम इस के लिये किसी को दोषी न ठहराते हुए - आप लोगों से केवल आज के नाते इस ओर भी कदम बढ़ाने की

अनुरोध अनुनय करते हैं।

वर्तमान युग कुलीय आदि-
त्मिक जगत् केवल कविता में ही अनु-
भव हो रहा है - गद्य तथा कथा
कहानी में, जो कि इसके एक अंग
रूप हैं, वे अनुभव नहीं हो
सकते - यह बात नहीं है, इसके
लिये केवल प्रोत्साहन की जरूरत है
और वह कार्य आप में अपने
हाथ में लेता हूँ - आप लोगों
को इस ओर कदम बढ़ाने के
लिये पुनः र प्रोत्साहित करता
हूँ। आइये - आइये और आइये
अपने इस उजड़े उद्यान को
पल्लवित और पुष्पित कीजिये
इस में आप का और हमारा

प्राणी का श्रेय है - हित है और
कल्याण है।

इस के अतिरिक्त अन्य
लोगों से एक अनुरोध और करनी
है और वह यह कि अभी का
बहुत काल व्यतीत न हुआ होगा
जब कि हमारे कुछ भाइयों ने गुज-
राती भाषा तथा लिपि ही गुज-
राती भाइयों पर, अपनी मातृ-
भाषा को न जानने के कारण,
अनेक अनजाने आक्षेप तथा अनु-
चित शब्द व्यवहृत किये थे। हमारे
ध्यान में वे आक्षेप युक्ति युक्त
न थे। हमें किसी प्रान्तीय भाषा
से नाक भौं सिकोड़ने की जरूरत नहीं
है अपितु दुनिया में हरेक भाषा
से भलाई लेने की सलाह रखते

हुए आगे न कदम रखना चाहिये।

आप को पता है - इस

भाषा का अनुभव का महात्म्य के

पूर्व से पर (ऊपर से लेकर

नीचे तक) कितना महत्व है? एक

संस्कृत और प्राकृत भाषा बिना व्याकरण

व्याकरणिका आदि, भारत प्रदेश में -

बोला नहीं रह सकता अपितु अपने

धर्म को, देश को और देश

को भी नष्ट कर सकता है।

ध्यान रहे यही भाषा यहा के

निवासियों की देश-भाषा - राष्ट्र-भाषा

बन सकती। आज यहा के प्रत्येक

प्रत्येक को स्कूल में गुजराती पढना लाजमी

है। उनको जो पंचायतराज का वहा

सरकार आज गुजराती भाषा में

इतने रंग चुके हैं कि आज उन्हें अप
भाषा का ज्ञान भी बोध नहीं है।
कहने का तात्पर्य यह है कि
जिस भाषा को एक अन्य महाद्वीप
ने इतना अधिक महत्व है चाहे
वह किसी भी वजह से क्यों न हो
उसे हम भारतीय कुदृष्टि से
देखते हुए ज्ञान भी सकुचाते नहीं
यह बड़े अफसोस की बात है।
विशेष कर हम गुरुकुल वासियों के
लिये। किसी ने अंग्रेजी ... कहा है - आज भारतवासियों में
स्वतंत्र भावना का अभाव है।"
हम लोगों को तो इस लोभ से
हर हालत बचना चाहिये क्योंकि
भारत है - मेरे भाई इस बात से
अपने बचने का यत्न करेंगे

सभा का कार्य :——

वाग्वर्धिनी सभा का महाविद्यालयस्थ सभाओं में प्रमुख स्थान है। यह अपने जन्म से लेकर आज तक अपनी आयु वृद्धि के साथ २ उन्नति पथ की ओर ही अग्रसर होती जा रही है - इस से मेरे ख्याल में प्रत्येक कुलवासी को हर्ष और गर्व होगा और होना भी चाहिये इतना सब कुछ होते हुए भी यह उत्साह और इतना उत्कर्ष हम लोगों के लिये अपर्याप्त है। हमारा उद्देश्य महान् है - ध्येय अनेक एवं असीम हैं अतः वर्तमान उन्नति तथा उत्कर्ष को ही देख कर हमें हाथ पर हाथ धर कर बैठ न जाना चाहिये अपितु

प्रयत्न रहते इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये। आशा है उत्कर्ष-विलासी जन अपने उत्साह में किसी भी प्रकार की न्यूनता न आने देंगे।

इस रण में मंत्री आदियों का प्रभाव . . . [illegible] हुआ। मंत्री का मन धर्मवीर-जी मनोदशा के कारण पर डाला गया तथा इस युद्ध को उठाने में लाल बुद्ध जी प्रकाश ने विशेष उत्साह दिखाया (उपमंत्री रूप में)। उपाध्यक्ष - उपसंपादक को वर्ष भर के लिये युद्ध में जुटे रहने दिया गया।

मंत्रियों ने प्रभाव के बल से ही कार्य विशेष उत्साह एवं जोश से करना प्रारम्भ कर-दिया है फिर भी यह जोश न-

जाती है । इसी महीने भी न केवल होगा कि अपने सामान्य ५.६ अधिवेशन करवाये दिये हैं जिनमें विशेष अधिवेशनों की संख्या पर्याप्त है ।

इस सभा की कार्य-कारिणी में निम्न सदस्य हैं —

श्री धर्मवीर जी १३ वां
श्री चन्द्र गुप्त जी १२ वां
श्री नरेन्द्र जी १३ वां
श्री आनन्द जी १२ वां
श्री रामपाल जी १४ वां
श्री विजयनारायण जी १३ वां
श्री सतीश कुमार जी १२ वां
श्री देवेन्द्र नाथ जी ११ वां

सहायक रूप में हमारे पाठक-गण हर समय ~~[illegible]~~ तत्पर रहते हैं ही और रहेंगे भी ही

रहे हैं।

इन सब के अतिरिक्त गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी अनियमों का ध्यान पाठकों की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। अगर विद्यार्थियों को झूठे विश्वास दिलाकर हतोत्साहित न किया जाय तो अधिक अच्छा है।

भाषा शैली की रुचि में परिवर्तन —

गत वर्षों में भाषा शैली के लिये ध्वनि विशेष को प्रधान मानी जा कर, शैली का अधिक ध्यान करना दिया जाता था किन्तु इस वर्ष इस प्रचलित रुचि को उचित न समझ कर - कॉलेज प्रांगण में भाग लेने वाली पार्टियों में जो विजयी हों उसे प्रधान महत्व का मान

दिया जाय. यह सोचकर इस का-
र्यक्रम देश से इसी तरह कार्य किया
गया जिससे जहां स्वराज्य का मह
बढ़ा वहां कांग्रेस के प्रचार में भी
बहुत अधिक उत्साह देखा गया। साथ
ही प्रधान मंत्री पद्मसिंह शर्मा का ही
हो सकता है - यह नियम साथ में
और लागू कर दिया गया था। इस
का तीन दलों ने कांग्रेस-प्रचार में
भाग लिया - जो क्रमशः साम्य-
वादी, हिन्दू महासभा तथा कांग्रेस
दल से थे। जिनमें साम्यवादी दल
जिसके नेता श्री देशपांडे जी उपस्थित
थे और जिनमें अधिक देश से
महोदय श्रेणी के विद्यार्थी गण-
गृहीता थे, विजयी रहा। दूसरे पर
हिन्दू महासभा ने आसन जमाया।

इस प्रकार कांग्रेस को, जिस में
अधिक सदस्य भाग लेते थे तथा एकराय
की थी, सफलता मिली । और ऐसा
समय में सब को सरकार का
ही सहारा लेना पड़ा । इत्यादि ।

तीसरी - सम्मेलन

जिन दिनों कुल की ओर
से यहाँ तीसरी सम्मेलन का आयो-
जन किया गया था उन दिनों दुर्भाग्य
वश कई या प्रमाण वश
हमारे एक बड़ी मीटिंग के दौरान
यहाँ उपस्थित न थे । इसी कारण
तीसरी सम्मेलन में हम प्रस्ताव विभागों
में हमारी उपस्थिति का एक भी
विवरण न था । इस कलंक को
हमारे उस वर्ष ने आकर

हजारों नहीं लाखों की भीड़ में, रोज शरद ऋतु में प्रात: ठण्ड सलिल-गङ्गा के शीतल जल में पुन: २ अभ्यास कर कर के प्रथम पुरस्कार विजेता रूप में कुल की गौरव बढ़ा दिया। उन भाई जी का नाम, आज इस पत्रिका में लिखते हुए हमें विशेष हर्ष हो रहा है - वे हैं भाई श्री रघुनाथ जी उपाध्याय। साथ ही हमारे प्रथम वर्ष के भाई शिवानन्द जी भी साथ जाते थे - जो द्वितीय पुरस्कार विजेता - लम्बी तैरी में थे। इस कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये हम इन दोनों कुल बन्धुओं का हृदय से स्वागत तथा अभिनन्दन करते हैं।

अपनी बात

यह इस वर्ष का द्वितीय अंक आपके हाथों में प्रस्तुत है।

प्रथम अंक और द्वितीय अंक के मध्य में जो इतना बड़ा व्यवधान आगया है, इसके लिये हम सिवाय अपनी त्रुटि या अपनी असमर्थता जाहिर करने के और क्या कर सकते हैं।

'राजहंस' गुरुकुल के लब्ध प्रतिष्ठ मासिकों में से एक है; उसका प्रकाशन नियम की दृष्टि से तो प्रतिमास होना चाहिये; लेकिन हम अपनी दुर्बलता के कारण उस नियम

को कायम नहीं रख सके; इस के लिये हम अपने सहृदय पाठकों के निकट क्षमा प्रार्थी हैं।

हम आशा करते हैं, हमारे पाठक हमारी इस कमज़ोरी का ख्याल रखते हुए हमें अवश्य क्षमा करेंगे।

गुरुकुल की साहित्यिक अवस्था

पुराने पत्र-साहित्य के परिशीलन को पढ़कर देखने से मालूम होता है कि, जब हमारा गुरुकुल 'उस पार' था, उस समय हमारे गुरुकुलीय साहित्य की धारा एक स्वतंत्र ही मार्ग पर अग्रसर होती जा रही थी। वहाँ की परिस्थिति ही कुछ और थी। उन रचनाओं में, जो 'उस पार' की स्वतंत्र परिस्थितियों में बैठकर निर्माण की गई हैं, अनुस्यूत भावनाओं का परिशीलन कर सहज

ही इस बात को जान सकते हैं कि, वहाँ और यहाँ में कितना अन्तर है। वहाँ की अधिकांश रचनाओं में, 'गंगा' 'हिमालय' 'खदुआ' और इसी तरह की अन्यान्य कई वस्तुएँ, अत्यधिक आत्मीय बनकर मानो पच सी गयी हैं। गुरुकुलीय साहित्य का स्वतन्त्र और खुला विकास, जो शनैः २ अपना एक निश्चित रूप धारण करनेवाला था, गुरुकुल के उस पार से इस पार उठ आने के कारण वहीं का वहीं रुक गया। आज भी हम कभी २ 'गंगा' और 'हिमालय' आदि विषयों पर कलम उठाते हैं अवश्य; लेकिन उसमें वह घनिष्ठ अपनापन, दिल का वह स्वाभाविक पिघाल नज़र नहीं आता और यह है भी

अनिवार्य !

आज हम से, हमारा वह छोटा सा किन्तु अपने आप में सर्वथा पूर्ण संसार छिन चुका है; हमारी परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। गुरुकुल गंगा की उन निसर्ग चंचल तरंगावली के प्रसाद से वंचित 'नहर' के इस नितान्त निर्जीव प्रवाह के किनारे पर आ बसा है।

यदि हम उसी स्थान पर, उसी परिस्थिति में बने रहते तो, कदाचित हमारा गुरुकुलीय साहित्य, हिन्दी साहित्य के अन्दर अपना एक स्वतन्त्र एवं गौरव पूर्ण स्थान रखता; लेकिन शायद भगवान् को यह पसन्द नहीं था। हम लोगों ने 'उस पार' का

परित्याग करके जहाँ असंख्य लोगों का परित्याग कर दिया है, वहाँ हमने एक बड़ी भारी अमूल्य साहित्यिक सम्पत्ति -का भी परित्याग कर दिया है।

अब हम गंगा के इस पार हिमालय के आँचल से काफी दूर, शहरी वातावरण के अत्यन्त निकट आकर बस गये हैं। हमारा अपना वह संकीर्ण वातावरण - वह सीमित घटाकाश - एक अपने से बहुत बड़े वातावरण में मानो घुल गया है, या घुलता जा रहा है। अब हम अपनी स्वतन्त्रता को बाहरी दुनिया की इस बहती स्वतन्त्रता में मिला चुके हैं। कथन का अभिप्राय यह है कि, अब हम पर भी बाहरी दुनिया का रंग चढ़ता जा रहा है।

यह भी ठीक ही है। इससे जहाँ

एक दृष्टि से हमारा उपकार हुआ है, हम अपनी स्वतन्त्रता को कायम नहीं कर सकें-गे, वहाँ हम हिन्दी के सार्वभौम साहित्य निर्माण में अच्छी तरह सहायक हो सकें-गे, यह उपकार की ही बात है। पहले हम लोग हिन्दी साहित्य के खुले क्षेत्र में होने वाले विकास के पैरलल ही अपने आपको विकसित कर रहे थे; अब हमने अपनी विकास की रेखा को उस विकास की रेखा के साथ मिला दिया है, अब हमारा विकास और वह विकास एक ही ~~रेखा में~~ ~~कोई~~ एक ही डायरेक्शन में, दिन दूनी और रात चौगुनी वेग से दौड़ लगा रहा है।

यह होना ही था; इसमें कोई बुरी बात भी नहीं। 'उस पार' से 'इस पार' अनुकूल के उठ आने से स्वागत में; बाहर की परिस्थितियों में, भेद होना ही था; लेकिन उससे, हमारे आत्मा के प्राणों में कोई भेद नहीं आ पाया। हमारा जो हृदय उस आसमान के नीचे, उन पर्वतों और जंगलों के वातावरण में जिस तरह धड़क रहा था, वही हृदय अब भी हमारे अंदर उसी तरह धड़क रहा है। इस लिये उस पार को छोड़ने से हमारे मन को जो भी कुछ हानि उठानी पड़ी है, उसके लिये, विशेष अनुशोचन करने की जरूरत नहीं। हमारे तम्बूरी का वह पुराना भरता हुआ तार टूट गया

005716 .

तो क्या हुआ, नगर का मंदिर से शुरू किया जा सकता है। अभी हमारे पास पुरानी कृतियाँ पड़ी हुई हैं, उनकी समाधि पर हम नवीन कृतियाँ भी ले-सकते हैं।

वास्तव में हमारे गुरुकुल का आधुनिक युग, हमारे पुराने कविता के युग से कई गुना अधिक उज्वल है। उस युग में हमारे पास भाव थे, पर भाषा नहीं थी; अब हमारे पास भाषा तो पहले से अच्छी मिल ही गई है. भाव भी पहले की अपेक्षा उन्नत मिलते जा रहे हैं।

इस साहित्य की वर्तमान स्थिति से सहज ही भविष्यत् की कल्पना की जा-सकती है। —— आनंद ४.सं.